एम. ए. (हिन्दी)

सत्र - III (CBCS)

हिन्दी अभ्यासपत्रिका क्र. १३.२

विशेष अध्ययन जैनेंद्र

(SPECIAL STUDY - JAINENDRA)

पेपर कोड - 99498

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्रा. सुहास पेडणेकर
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. रवींद्र कुलकर्णी,
प्र-कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. प्रकाश महानवार, संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व प्रमुख, मानव्य विद्याशाखा,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

अभ्यास समन्वयक एवं संपादक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहाय्यक प्राध्यापक (हिन्दी), दूर व मुक्त अध्ययन संस्था (IDOL),
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

लेखक : **डॉ. एस.टी. आवटे**
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
एस. आर. एम. महाविद्यालय, कुडाळ, जि. सिंधुदुर्ग.

: **डॉ. महात्मा पाण्डेय**
सहायक प्राध्यापक,
साठ्ये महाविद्यालय, दीक्षित रोड, विलेपार्ले (पू.).

: **डॉ. अनंत द्विवेदी**
सहायक प्राध्यापक,
के. जे. सोमय्या कला, वाणिज्य महाविद्यालय,
विद्याविहार मुंबई - ४०० ०७७.

मे २०२१, प्रथम मुद्रण

प्रकाशक
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई - ४०००९८.

अक्षरजुळणी
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
सांताक्रुझ, मुंबई.

अनुक्रमणिका

घटक क्र.	पाठाचे नाव	पान नं.
१.	त्याग पत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि, पात्रों का परिचय और उपन्यास का सारांश	१
२.	त्याग पत्र उपन्यास का शीर्षक उपन्यास में चित्रित समस्याएँ और उपन्यास का उद्देश्य	१२
३.	मुक्तिबोध उपन्यास विवेचन, विशेषतांए और सामाजिक संदर्भ	२३
४.	मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण स्त्री पुरूष सम्बन्धों का रूप, द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति और विवाहेतर सम्बन्धों के विविध रूप	३३
५.	जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कहानी - रूकिया बुढीया और दो सहेलियाँ	४४
६.	जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कहानी - अपना अपना भाग्य और खेल	५८
७.	जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कहानी - एक रात और पत्नी	७२
८.	जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कहानी - पाजेब और इनाम	८७
९.	जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ कहानी - जाह्नवी और बाहुबली	९९

*****

Semester - III (तृतीय सत्र)
Course Code : PAHIN 113.2

प्रश्न पत्र -१३.२

विशेष अध्ययन - जैनेन्द्र
(Special Study – Jainendra)

कुल श्रेयांक **(Credit)= 6**

पाठ्य पुस्तकें :

इकाई एक और दो **श्रेयांक -२**

१. त्यागपत्र - (उपन्यास)- जैनेंद्र कुमार
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

इकाई तीन **श्रेयांक -२**

२. मुक्तिबोध - (उपन्यास)- जैनेन्द्र
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

इकाई चार **श्रेयांक -२**

३. जैनेन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ -सं. लीलाधर मंडलोई
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

(**चयनित कहानियाँ** : **एक रात, खेल, अपना अपना भाग्य, रुकिया बुढ़िया, बाहुबली, जाहनवी, पत्नी, पाजेब, दो सहेलियाँ, इनाम)**

संदर्भ ग्रंथ : (प्रश्न पत्र -१३.१)

१. निबन्धकार : जैनेन्द्र कुमार - डॉ. विष्णु सरवदे
२. हिन्दी उपन्यास : स्थिति और गति - डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
३. जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म के तलाश - डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
४. हिन्दी कथा साहित्य का पुर्नपाठ - डॉ. करूणाशंकर उपाध्याय
५. आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास - डॉ. इंद्रनाथ मदान
६. हिन्दी उपन्यास एक अंतरयात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र
७. हिन्दी उपन्यास का इतिहास - डॉ. गोपाल राय
८. भूंमडलीकरण और हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुष्पपाल सिंह

१

त्याग पत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि, पात्रों का परिचय और उपन्यास का सारांश

इकाई की रूपरेखा

१.१ इकाई का उद्देश्य
१.२ प्रस्तावना
१.३ हिंदी उपन्यास का इतिहास और जैनेंद्र का साहित्य
१.४ जैनेंद्र कुमार का व्यक्तित्व और कृतित्व
१.५ त्यागपत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि
१.६ त्यागपत्र उपन्यास को पात्रों का परिचय
    १.६.१ उपन्यास की मुख्यपात्र मृणाल बुआ
१.७ त्यागपत्र उपन्यास का सारांश
१.८ लघुत्तरीय प्रश्न
१.९ दिर्घोत्तरीय प्रश्न

१.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से छात्र निम्नलिखित मुद्दों से अवगत होंगे |

१. हिंदी उपन्यास का उद्‌भव विकास तथा जैनेंद्र कुमार के साहित्य का समग्र परिचय |

२. त्यागपत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि तथा सारांश का परिचय प्राप्त होगा |

३. त्यागपत्र उपन्यास के देशकाल वातावरण तथा उसमें चित्रित सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश का परिचय होगा |

४. त्यागपत्र उपन्यास में चित्रित मुख्य तथा गोण पात्रो का विस्तृत परिचय प्राप्त होगा |

१.२ प्रस्तावना

हिंदी कथा साहित्य में जैनेंद्र कुमार का महत्वपूर्ण स्थान तथा योगदान रहा है। जैनेंद्र कुमार ने हिंदी कथा साहित्य को एक नया आयाम दिया है। जैनेंद्र कुमार ने हिंदी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक परंपरा का उद्‌भव और विकास किया है। उपन्यास समाट प्रेमचंद जी के समकालीन साहित्यकार के रूप में इन्होंने हिंदी साहित्य विश्व में प्रवेश किया और एक लंबे अरसे तक हिंदी साहित्य की सेवा करते रहे | जैनेंद्र जी ने मुख्य रूप से गद्य साहित्य की रचना की है। जैनेंद्र जी ने प्रेमचंद जी के सामाजिक समस्या प्रधान परंपरा के समानांतर मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणात्मक कथा साहित्य की रचना की इस तरह जैनेंद्र कुमार मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणात्मक साहित्य परंपरा के प्रणेता माने जाते है।

जैनेंद्र कुमार के साहित्य में सामाजिक समस्याओं के स्थान पर मानसिक द्वंद्व, संघर्ष दिखाई देता है। इनके साहित्य में प्रसंगों और घटनाओं स्थान पर पात्रों की संघर्षशील मानसिकता, मनोव्यथा, आत्म संघर्ष आदि का विश्लेषण दिखाई देता है। इनके उपन्यास त्यागपत्र में भी उनके उपन्यास परंपरा का सहज परिचय मिलता है। 'त्यागपत्र' जैनेंद्र कुमार की तीसरी औपन्यासिक कृति है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में प्रमोद नामक पात्रो कथा का सूत्रधार बनकर प्रस्तुत होता है। प्रमोद अपनी प्रिय बुआ (मृणाल) के मृत्यु की सूचना से तनाव तथा तीव्र मानसिक संघर्ष से गुजरते हुए बुआ के जीवन की शोकांतिका कथन करता है। इस तरह इस लघु उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक प्रमोद अपनी बुआ के जीवन संघर्ष को पाठकों के सामने रखता है। प्रमोद, बुआ के साथ और बुआ की याद में बिताए गए अनेक छोटे-बडे प्रसंगो, घटनाओं के चित्रण द्वारा बुआ के जीवनी की शोकांतिका को पाठको के सामने रखता है। प्रमोद बुआ की दयनीय अवस्था से अस्वस्थ होकर मानसिक संघर्ष में चला जाता है। त्यागपत्र उपन्यास में प्रमोद अपनी बुआ के जीवन की शोकांतिका को बुआ की मृत्यु घटना के साथ विशद करता है।

सन १९३७ में प्रकाशित त्यागपत्र उपन्यास में प्रमोद की मृणाल बुआ तत्कालीन आर्य समाज के संयुक्त परिवार व्यवस्था, प्रेमे की असफलता तथा अनमेल विवाह की परंपरा का शिकार हो जाती है, और जीवन के पथ से कटी पतंग की तरह लुढ़कती चली जाती है। प्रमोद मृणाल बुआ के जीवन के हर मोड़ पर उसे सहारा देने मे असफल हो जाता है। अपनी इसी असफलता से कुंठित होकर वह अपने न्यायाधीश पद से त्यागपत्र देता है। त्यागपत्र उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक पृष्ठभूमि पर मृणाल बुआ और प्रमोद भतीजे के मानसिक संघर्ष, द्वंद्व का मार्मिक चित्रण किया गया है।

१.३ हिंदी उपन्यास का इतिहास तथा जैनेंद्र कुमार का साहित्य

१९ वी सदी के अंतिम दशकों में हिंदी उपन्यास के उद्‌भव-विकास का परिचय मिलता है। सन १८८२ प्रकाशित लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षा गुरु' से ही हिंदी उपन्यास परंपरा का उद्‌भव माना गया है। इस तरह १९ वीं सदी के ९ वे दशक से हिंदी उपन्यास साहित्य के उद्‌भव और विकास की परंपरा का प्रारंभ दिखाई देता है। हिंदी उपन्यास साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह रही कि वह अपने उद्‌भव काल से ही सर्वाधिक लोकप्रिय विधा का गौरव पाने में सफल रहा है। हिंदी उपन्यास अपनी प्रारंभिक काल से ही कथ्य-शिल्प की दृष्टि से विविधता से भरा रहा है। देवकीनंदन खत्री, रामगोपाल गहमरी के तिलस्मी,ऐयारी जासूसी उपन्यासों ने लोकप्रियता के झंडे गाड दिए | दूसरी ओर किशोरी लाल गोस्वामी, राधा कृष्णदास बालमुकुंद शर्मा आदि उपन्यासकारों में सामाजिक, ऐतिहासिकता के आधार पर प्रेम, शौर्य, राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना से संबंधित उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास को उसके प्रारॅभिक काल में ही लोकप्रिय बनाया | प्रेमचंद जी के बिना हिंदी उपन्यास साहित्य का इतिहास ही अधूरा है। उन्होने हिंदी उपन्यास को कथ्य-शिल्प, शैली आदि सभी गुणो से समृद्ध बनाया और हिंदी उपन्यास को संख्यात्मक और गुणात्मक दोनो दृष्टियों से चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया | प्रेमचंद ने सामाजिक समस्या प्रधान यथार्थोन्मुख आदर्शवादी उपन्यासो की परंपरा को समृद्ध बनाया | प्रेमचंदोत्तर काल में हिंदी उपन्यास में अनेक नए विषयों का समावेश हुआ | यशपाल ने साम्यवादी, जैनेंद्र कुमार जी ने मनोवैज्ञानिक, सुदर्शन जी ने प्रेमचंद जी के सामाजिक समस्या प्रधान परंपरा का विकास

किया, ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा का भी विकास हुआ । स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यास के क्षेत्र मे अनेक प्रयोग हुए। बदलते हुए परिवेश के साथ अनेक नए विषयों को लेकर उपन्यास लिखे गए | फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा आंचलिक उपन्यासों की परंपरा का उद्भव और विकास हुआ । इस तरह हिंदी उपन्यास अपने प्रारंभिक काल से आज तक अपनी लोकप्रियता बनाए हुए है ।

जैनेंद्र ने प्रेमचंद जी के समानांतर अपने उपन्यासो के माध्यम से सर्वथा नए पथ का अनुगमन किया । इन्होने प्रेमचंद जी के सामाजिकता के स्थान पर अंतर्मुखी गतिविधियों के चित्रण की परंपरा प्रारंभ की । इस तरह जैनेंद्र पहले प्रयोगशील उपन्यासकार माने जाते है । जैनेंद्र के साहित्य में बाह्य गतिविधियों की अपेक्षा मानवीय मानस का चित्रण दिखाई देता है। उनका साहित्य मानव मन के सूक्ष्म विश्लेषण का साहित्य बन गया है । इस तरह जैनेंद्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासो की परंपरा का विकास किया । उनकी इस परंपरा विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में भी होता रहा है । स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्यकार अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि साहित्यकारों ने इस परंपरा का स्वतंत्र्योत्तर काल में विकास किया है |

१.४ जैनेंद्र कुमार का व्यक्तित्व और कृतित्व

जैनेंद्र कुमार का जन्म २ फरवरी १९०५ में अलीगढ़ के कौंडियागंज गांव में हुआ । उनका बचपन का नाम आनंदीलाल था | वह २ साल के हुए तब उनके पिता का देहांत हुआ । पिता के निधन के पश्चात उनकी माता और मामा ने उनकी परवरिश की | जैनेंद्र कुमार की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा उनके मामा द्वारा स्थापित हस्तिनापुर के गुरुकुल में हुई । जैनेंद्र कुमार ने मैट्रिक की परीक्षा १९१९ में पंजाब से उत्तीर्ण की, तथा उच्च शिक्षा के लिये काशी हिंदू विश्वविद्यालय में दाखिला लिया | सन १९२१ में असहयोग आंदोलन से जुडे रहे, तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स में भी कार्यरत रहे । सन १९२१ से १९२३ तक व्यापार भी किया, राजनीतिक पत्र के संवाददाता भी रहे, रोजगार की खोज में कोलकाता भी गए थे । किंतु हर तरफ से निराश होकर उन्होने लेखन को ही अपने उपजीविका का साधन बनाया और जीवन के अंत तक लिखते रहे । २४ दिसंबर १९८८ को उनका देहांत हुआ ।

जैनेंद्र का कृतित्व:

जैनेंद्र कुमार बीसवीं सदी के प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे उन्होने गद्य की प्राय: सभी प्रमुख विधाओं में साहित्य की रचना की है । उन्होने उपन्यास, कहानी, निबंध, अनुवाद, संपादन आदि गद्द विधाओ में साहित्य की रचना की है । उनकी साहित्यिक रचनाएं निम्नलिखित हैं ।

प्रकाशित रचनाएं - उपन्यास:

१) परख (१९२९),

२) सुनीता (१९३५),

३) त्यागपत्र (१९३७),

४) कल्याणी (१९३९),

५) विवर्त (१९५२),

६) सुखदा (१९५३),

७) व्यतीत (१९५३),

८) जयवर्धन (१९५६).

कहानी संग्रह:

१) फांसी (१९२९),

२) वातायन (१९३०),

३) नीलम देश की राजकन्या (१९३३),

४) एक रात (१९३४),

५) दो चिडिया (१९३५),

६) पाजेब (१९४२),

७) जयसंधि (१९४९) तथा जैनेंद्र की कहानियां (सात भाग).

निबंध संग्रह:

१) प्रस्तुत प्रश्न (१९३६),

२) जड़ की बात (१९४५),

३) पुर्वोदय (१९५१),

४) साहित्य श्रेय और प्रेय (१९५३),

५) काम प्रेम और परिवार (१९५३),

६) मंथन (१९५३),

७) सोच विचार (१९५३),

८) ये और वे (१९५४),

९) इतस्तत: (१९६३),

१०) समय और हम (१९६४) ,

११) परिप्रेक्ष्य (१९६३) साहित्य और संस्कृति ललित शुक्ल द्वारा संपादित (१९७९).

अनुदित ग्रंथ:

१) मंदाकिनी (नाटक १९३५),

२) पाप और प्रकाश (नाटक १९५३).

सहलेखन: तपोभूमि (उपन्यास त्रषभचरण जैन के साथ१९३२)

संपादित ग्रंथ:

- साहित्य चयन (निबंध संग्रह १९५१)
- विचार वल्लरी (निबंध संग्रह१९५२)
- पुरस्कार / सम्मान
- १९७१ में पद्मभूषण
- १९७९ में साहित्य अकादमी पुरस्कार

१.५ त्यागपत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य में वह सब कुछ होता है जो समाज में दिखाई देता है। उपन्यास विधा को तो वास्तविक समाज का काल्पनिक चित्रण ही माना जाता है। इस दृष्टि से उपन्यास में बिना किसी लाग लपेट के अपने समय के समाज का सीधा सरल चित्रण किया जाता है। किसी भी उपन्यास को जानने समझने और उसकी समीक्षा करने के लिए उपन्यास की पृष्ठभूमि का जानना जरूरी होता है। साहित्य काल सापेक्ष होता है, किसी भी रचना का अध्ययन अध्यापन करने से पूर्व रचनाकार के समय की पृष्ठभूमि तथा विविध परिस्थितियों को जान लेना उपयोगी होता है। साहित्यकार की कृति उसके आसपास की पृष्ठभूमि का आंकलन होती है। कथा का आधार, पात्रो का चरित्र चित्रण, प्रसंगों का विवेचन विश्लेषण तथा लेखक का मंतव्य आदि भी पृष्ठभूमि की ही उपज होता है। इसलिए उपन्यास के मूल्यांकन के लिए उसके समय की पृष्ठभूमि का परिचय आवश्यक हो जाता है। वैसे तो जैनेंद्र कुमार के उपन्यास बाह्य पृष्ठभूमि की अपेक्षा पात्रों की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण करने वाले उपन्यास है। पात्रो की मानसिक स्थिति भी बाह्य पृष्ठभूमि से उत्पन्न होती है। वस्तुतः व्यक्ति का व्यक्तित्व बाह्य परिस्थितियों तथा अंतर्गत विचारधारा से प्रस्फुटित होता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यास में भी उपन्यास की पृष्ठभूमि का जान लेना आवश्यक हो जाता है|

त्यागपत्र उपन्यास चरित्र प्रधान लघु उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा का सूत्रधार पात्र प्रमोद अपनी बुआ मृणाल के संघर्षशील जीवन को पाठकों के सामने खोलकर रखता है। स्वतंत्र पूर्व काल की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस उपन्यास में तत्कालीन समाज में नारी की परिवार से लेकर समाज तक होने वाली उपेक्षा का चित्रण दिखायी देता है। मृणाल बुआ घर परिवार से लेकर ससुराल तथा पूरे समाज में उपेक्षा का शिकार होकर जीवन की अनेक समस्याओं से जूझती हुई जीवन का अस्तित्व खो देती है। लेखक ने त्यागपत्र उपन्यास में

तत्कालीन पृष्ठभूमि पर, विशिष्ट परिस्थिति से घिरकर बचपन से लेकर मृत्यु के समय तक उपेक्षा, प्रताड़ना का शिकार हुई नारी के जीवन की शोकांतिका को चित्रित किया है। तत्कालीन संयुक्त परिवार, समाज में प्रेम संबंधों की उपेक्षा, अनमेल विवाह की अभिशप्त स्थिति तथा समाज में अकेली नारी की ओर देखने का भोगपरख दृष्टिकोण आदि विविध परिस्थितियों को केंद्र में रखते हुए इस उपन्यास की रचना की है। तत्कालीन पुरानपंथी रूढिवादी समाज की पृष्ठभूमि में एक खुद्दार नारी पर हुए अन्याय, अत्याचार, शोषण-दमन की कथा के रूप में मृणाल की कथा चित्रित की गई है। त्यागपत्र उपन्यास मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक रुप में प्रमोद और उसकी मृणाल बुआ की मानसिक द्वंद्व के साथ सामाजिक पृष्ठभूमि का आंकलन करने वाला लघु उपन्यास है|

१.६ त्यागपत्र उपन्यास के पात्रों का परिचय

जैनेंद्र कुमार के उपन्यासो में दार्शनिक और अध्यात्मिक तत्वों की प्रधानता रहती है। इन तत्वों का समावेश अनेक प्रसंगो और घटनाओं के माध्यम से पात्रो के मानसिक संघर्ष में रूपायित होता है। उनके उपन्यासों के पात्र बाहय वातावरण और परिस्थितियों से प्रभावित ना होते हुए स्वयं की अंतर्मुखी गतिविधियो से संचालित होते हैं। इनके उपन्यासों में सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासों की तरह पात्रो की भरमार नहीं होती| इसके विपरीत किसी एक केंद्रीय पात्र के मानसिक द्वंद्व के कारण उनके पात्र प्रस्तुत होते हैं। त्यागपत्र लघु उपन्यास भी इसके लिए अपवाद नहीं है। इस उपन्यास में मुख्य दो पात्र है - एक प्रमोद जो अपनी मृणाल बुआ को लेकर आत्मा विवंचना में डूबा हुआ है, तथा दूसरा पात्र मृणाल बुआ है जो पारिवारिक तथा सामाजिक रूढीवादी व्यवस्था के फल स्वरुप अभिशप्त जीवन बिताते हुए मर जाती है। इसके अलावा उपन्यास के पूर्वार्ध में मृणाल की सहपाठी शीला तथा उसका बड़ा भाई तथा मृणाल का प्रेमी का उल्लेख होता है, तो उत्तरार्ध में प्रमोद का मित्र सतीश, प्रमोद के फूफा, प्रमोद की माता-पिता, प्रमोद के लिए विवाह को रिश्ते के रूप में राजनंदिनी युवती, तथा राजनंदिनी के डॉक्टर पिता और कभी न हुई प्रमोद की सास उल्लेखित होते है। प्रमोद के संयुक्त परिवार के सदस्यों का कथा में उल्लेख मात्र दिखाई देता हैं।

बुआ का भतीजा प्रमोद:

प्रमोद इस उपन्यास का केंद्रीय पात्र तथा उपन्यास की कथा का सूत्रधार भी है। उपन्यास के प्रारंभ में वह घर परिवार संसार से विरक्त अधेड़ उम का प्रौढ चिंतनशील व्यक्ति बनकर सामने आता है। प्रमोद की बातों से स्पष्ट हो जाता है कि वह अत्याधिक मानसिक तनाव और मानसिक द्वंद्व से घिरा हुआ है। वह माता-पिता की इकलोती संतान है। वह मध्यम वर्गीय रूढिवादी परिवार में बड़ा हुआ है। प्रमोद बचपन से ही भावुक और संवेदनशील है। वह बुआ के प्रति सहज भाव का परिचय देता है। प्रमोद और बुआ के बीच बड़ा लगाव है, उन दोनो के बीच भाई- बहन की तरह संबंध दिखाई देता है। प्रमोद छोटी उम्र में ही समाज के रीति रिवाज, पारिवारिक मर्यादा को जानता समझता है और समझदार लड़का प्रतीत होता है। वह पढाई में कुशाग्र बुद्धि बालक है, अपने इसी बुद्धिमत्ता के बल पर वह जज बन जाता है। इस तरह प्रमोद आर्थिक सामाजिक और व्यावहारिक स्तर पर एक सफल इंसान है। वह बाहर से जितना स्वस्थ और सम्पन्न है, उतना ही बुआ को लेकर अस्वस्थ

तनावग्रस्त तथा चिंताग्रस्त दिखाई देता है। प्रमोद के मानसिक संघर्ष, तनाव और चिंता का मुख्य कारण मृणाल बुआ है। प्रमोद उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक बुआ के जीवन संघर्ष को लेकर अत्यंत तीव्र मानसिक तनाव और मानसिक संघर्ष से ग्रस्त दिखाई देता है। उपन्यास के अंत में अपने बुआ के जीवन संघर्ष की शोकांतिका के लिए प्रमोद अपराध का बोध महसूस कर अपनी नौकरी से त्यागपत्र देता है।

प्रमोद के व्यक्तित्व को इस उपन्यास केंद्र में रखकर चित्रित किया गया है। उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक प्रमोद एक क्षण के लिए भी तनाव मुक्त दिखाई नहीं देता। इस तरह प्रमोद का व्यक्तित्व एक विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट विषय को लेकर निरंतर आत्म संघर्ष करने वाले व्यक्ति का चरित्र है। प्रमोद पात्र के माध्यम से स्वतंत्रपूर्व काल के परिवार के लिये वात्सल्य रखनेवाले युवक के चरित्र को चित्रित किया गया है।

१.६.१ उपन्यास की मुख्य पात्र मृणाल बुआ :

मृणाल बुआ इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक लेखक ने मृणाल के जीवन संघर्ष का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। वह इस उपन्यास की नायिका है। यह उपन्यास मृणाल के चरित्र के विविध पहलुओं को बड़े ही जिज्ञासापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है। बुआ एक आम लड़की की तरह अपने भाभी-भाई तथा भतीजी के साथ परिवार में रहती है, स्कूल जाती है, शरारत करते है। स्कूल की कक्षाओ में बदमाशी भी करती है। वह एक भावुक लड़की है। वह अपनी सहेली के भाई से प्रेम करती है, उसका प्रेम एक तरफा है। इसलिए वह उसमे सफल नहीं होती | उसके इसे प्रेम के मामले से ही उसके जीवन में परिवर्तन आता है। लोकलाज के कारण मृणाल के भाभी और भाई उसकी शादी करते है। बुआ अनमेल विवाह की शिकार होती है। विवाह के उपरांत मृणाल के जीवन की शोकांतिका का काल शुरू होता है। पहले तो वह ससुराल ही जाना नहीं चाहती, लेकिन भाई-भाभी के सामने उसकी एक नहीं चलती है, और उसे ससुराल भेज दिया जाता है। उसका वैवाहिक जीवन उसके लिए अभिशाप बन जाता है। वह मां तो बनती है लेकिन वहां भी उसका दुर्भाग्य पीछा नहीं छोडता, वह एक मृत कन्या को जन्म देती है। पति द्वारा अत्याचार सहते हुए वह बेहाल हो जाती है। पति दुश्चरित्र का आरोप लगाकर मृणाल को मायके चले जाने के लिये कहता है। मृणाल के न मानने पर पति उसे घर से निकाल देता है। कुछ समय तक पति उसे गांव के किसी कोने में रखता है, प्रारंभ में उसका पति उसे आर्थिक सहायता देता है, किंतु कुछ समय बाद आर्थिक सहायता देना बंद कर देता है। आर्थिक सहायता के बिना मृणाल का बेहाल हो जाता है, विवशता में वह कोयले वाले की रखेल बन जाती है। कोयले वाले से भी उसे कन्या होती है, आर्थिक अभाव के कारण कन्या मर जाती है, कुछ समय के लिये वह शिक्षक बन जाती है। किंतु वहां से भी निकाले जाने पर, जीवन के आखरी समय में वह किसी गंदे इलाके में बस जाती है। वहीं उसकी मौत होती है |

ऊपर लिखित पात्रो के साथ मृणाल की सहेली शीला, मृणाल का यार तथा शीला का बड़ा भाई, प्रमोद का मित्र सतीश, कोयलेवाला, राजनंदिनी, राजनंदिनी के पिता, प्रमोद का वकील मित्र आदि पात्रों का गौण रुप में परिचय मिलता है।

१.७ त्यागपत्र उपन्यास का सारांश

साहित्यकार जैनेंद्र कुमार हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में विख्यात रहे है। उनका समग्र साहित्य मानवीय मनोविज्ञान और अंतर्मुखी प्रवृत्तिको उद्धाटित करने वाला साहित्य है। उनका उपन्यास साहित्य भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उनका त्यागपत्र उपन्यास भी इसी परंपरा का प्रतिनिधिक उपन्यास है। केवल दो पात्रो को केंद्र मे रखकर लिखे गए इस उपन्यास में, उपन्यास का केंद्रीय पात्र व सूत्रधार प्रमोद न्यायाधीश है, तथा न्यायाधीश पद से त्यागपत्र देकर अपनी बुआ के जीवन की दर्द भरी कहानी को पूर्व दिप्ती शैली में प्रस्तुत करता है। प्रमोद उपन्यास के शुरुआत में ही तीव्र मानसिक संघर्षा से गुजरते हुए अपनी बुआ तथा अपने परिवार का परिचय देता है | प्रमोद के परिवार में प्रमोद और बुआ सबसे छोटे सदस्य है, मृणाल भले ही प्रमोद की बुआ हो किंतु उन दोनो में केवल चार-पांच वर्षो का अंतर है, बुआ प्रमोद से केवल चार पांच वर्ष से ही बड़ी है। प्रमोद और मृणाल में बड़ा स्नेहमयी संबंध है, बुआ, प्रमोद को अपने स्कूल की हर छोटी बड़ी घटना बताती है, और प्रमोद भी बुआ की बातों को सरसता से सुनता है। इस तरह बचपन से ही प्रमोद और बुआ में आत्मीयता का घनिष्ठ संबंध होता है। प्रमोद अपने माता-पिता की अकेली संतान है, प्रमोद के घर में तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था के अनुरूप अनुशासन की व्यवस्था है। वैसे तो प्रमोद के दो चाचा है और अन्य तीन बुआ भी थी, किंतु आज घर मे वह केवल अपने माता-पिता और मृणाल बुआ के साथ रहता है। प्रमोद की मां अनुशासन प्रिय गृहिणी है।

मृणाल बचपन में बड़ी शरारती रही है। वह अपने भतीजे से बड़ा स्नेह रखती है। मृणाल अपनी सहेली शीला के बड़े भाई से प्यार करती है। तत्कालीन समाज व्यवस्था तथा पारिवारिक बंधनों के कारण मृणाल का प्रेम असफल होता है। मृणाल के प्रेम की खबर परिवार वालों को होते ही उसे स्कूल भेजना बंद कर दिया जाता है, और उसकी यथाशीघ्र शादी कर कर दी जाती है। मृणाल का विवाह अनमेल विवाह है, मृणाल को अपना पति बिल्कुल सुहाता नहीं है। मृणाल ससुराल जाना नहीं चाहती है, कितु सनातनी आर्य परिवार की सनातनी परंपरा की शिकार हो जाती है, मृणाल को ससुराल भेज दिया जाता है। प्रमोद मृणाल को ससुराल भेजने के खिलाफ है, किंतु वह छोटा है इसलिए वह बेबस हो जाता है। मृणाल सप्ताह भर में ही ससुराल से लौट आती है, अनेक बहाने बनाकर ससुराल जाना नहीं चाहती है, इसी बीच वह शीला के भाई को चिट्ठी लिखती है और चिट्ठी के जवाब में उदास हो जाती है। अंततः एक दिन मृणाल का अधेड़ उम्र का पति उसे अपने घर ले जाता है।

मृणाल के ससुराल जाने के बाद प्रमोद के घर से मृणाल की चर्चा पर पूर्ण विराम लग जाता है, लेकिन प्रमोद मृणाल बुआ को हमेशा याद करता रहता है। ससुराल में मृणाल के जीवन का अत्यंत कठिन संघर्ष का अध्याय शुरू होता है, पति उसे पिटता है, उसे मानसिक यातनाएं देता है, नौबत यहां तक आ जाती है कि उसे मायके जाने के लिए कहा जाता है। इसी बीच वह एक मृत कन्या को जन्म देती है। मृणाल मायके जाने के लिये तैयार न होने पर उसे घर से बाहर निकाल कर किसी और जगह रखा जाता है। शुरुआत में उसका पति उसका खर्चा उठाता है। किंतु कुछ समय बाद पति के मदद के सारे द्वार बंद हो जाते है। मृणाल के लिए जीना मुश्किल हो जाता है। इस स्थिति में मृणाल किसी कोयलेवाले की रखैल बन जाती है। प्रमोद बड़ा हो जाता है बी. ए. की कक्षा में पढता है। किंतु बुआ को

लेकर हमेशा चिंतित रहता है। एक दिन उसे अपने मित्र से बुआ के घर का पता मिल जाता है, प्रमोद यथाशीघ्र बुआ के पास चला जाता है। बुआ एक गंदी बस्ती के बदबूदार कोटरी में रहती है। उसी कोटरी के बाहर कोयले की दुकान मैं कोयलेवाला व्यवसाय करता है, वह बुआ की हालत देखकर अत्यंत दुखी होता है और बुआ को अपने साथ चलने का आग्रह करता है, बुआ को पिताजी के मृत्यु की खबर भी देता है। बुआ उसे अपनी कर्म कहानी सुनाते हुए कहती है कि अब वह सभ्य समाज में जाने के योग्य नहीं रही है। वह जानती है कि एक दिन कोयलेवाला भी उसे छोड़ देगा, तब वह भगवान भरोसे जीवन बिताएगी | अब उसकी दुनिया अलग हो गई है। प्रमोद बुआ की कुटिया से खाली हाथ लौट आता है |

कुछ समय बाद प्रमोद फिर से बुआ के गंदे इलाके में जाता है, तब उसे वहां वह कोयलेवाला और बुआ दोनो दिखाई नहीं देते। वह जानता था कि बुआ मां बनने वाली है, इसलिए वह अस्पताल चला जाता है। अस्पताल की नर्सों द्वारा उसे पता चलता है की बुआ वहां आई हुई थी, और उसने कन्या को जन्म दिया था | वह अस्पताल वालों से नौकरी मांग रही थी। अस्पताल की नर्स ने बुआ को ईसाई धर्म अपनाने का आग्रह किया था और इसाई बनने के बाद ही नौकरी मिलने की शर्त रखी गयी थी। बुआ ने उस शर्त को अस्वीकार करते हुए अस्पताल छोड़ दिया था | प्रमोद अपने लिए आए हुए लड़की के रिश्ते के सिलसिले में किसी अन्य शहर जाता है तब उसे उसकी बुआ उस लड़की के घर में दिखाई देती है। लड़की की मां बुआ तारीफ करते हुए बताती है कि बुआ उनके यहां बच्चों को पढाने आती है, और यहां पास के स्कूल में वह अध्यापिका है | अगले दिन प्रमोद बुआ के घर चला जाता है और बता देता है कि उसने बुआ को खूब ढूँढा, अस्पताल भी गया, वहां से भी पता चला कि वहां बुआ नहीं है। फिर एक बार प्रमोद बुआ को घर चलने का आग्रह करता है। किंतु अब की बार भी बुआ प्रमोद के साथ जाने से इंकार करती है।

प्रमोद बुआ की कहानी कहते हुए थक जाता है, और अंतर्मुख होकर सोचने लगता है कि उसके बुआ ने समंदर रूपी समाज में छलांग लगा दी है, और पानी के थपेड़ों से समंदर की गहराई में उतर गई है | अब उसका समंदर के किनारे लौटना संभव नहीं है। समाज के लोग तो समुद्र के किनारे ही बस जाते हैं वे समंदर के गहराई में जाने से डरते हैं।

उपन्यास के उत्तरार्ध मे प्रमोद कहता है कि उसने फिर एक बार अपनी बुआ को घर ले जाने की कोशिश की थी किंतु जब वह बुआ के स्कूल चला गया, तब उसे वहां बुआ नहीं मिली | उसने अंततः बुआ को एक ऐसी बस्ती में पाया जो सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से बहिष्कृत थी | प्रमोद ने वहां भी बुआ को घर चलने की याचना की थी। किंतु बुआ ने कहा था कि अब वह यहां से तभी जा सकती है जब प्रमोद यहां के लोगों को भी उसके साथ घर ले जाएगा | इस तरह प्रमोद हर बार मृणाल बुआ को अपने घर ले जाने की कोशिश करता रहा और बुआ हर बार जाने से इंकार करती रही | बुआ के बीमार हो जाने पर प्रमोद उसे अस्पताल में भर्ती करना चाहता है किंतु बुआ मना करती है। प्रमोद आखिर अपने परिचित वकील को पैसे देकर बुआ की देखभाल के लिये कहता है।

उपन्यास के अंत में प्रमोद अपने और बुआ के रिश्ते को लेकर अत्यंत संवेदनशीलता से सोचने लगता है कि वह बुद्धिमान था या मूख था जिसने अंत तक बुआ को घर ले जाने में

सफलता नहीं पाई। अपनी इस आत्मग्लानि में बुआ की मृत्यु की खबर से आत्मकेंद्रित होकर प्रमोद अपने न्यायाधीश पद से त्यागपत्र देता है।

त्यागपत्र उपन्यास आत्मकथनात्मक शैली मे लिखा गया लघु उपन्यास है। आठ खंडो मे लिखे गए इस उपन्यास का प्रारंभ बुआ की मृत्यु की खबर से मानसिक रूप से अस्वस्थ प्रमोद के पाप और पुण्य की समीक्षा करने से होता है। उपन्यास की कथा पूर्वदिपति शैली मे लिखी गई है।

उपन्यास के प्रारंभ से पूर्व लेखक ने 'प्रारंभिक, शीर्षक देकर यह लिखा है कि यह कथा सर एम. दयाल नामक प्रांत के चीफ जज की कथा है, जिन्होंने जजी त्याग कर कई वर्षां तक हरिद्वार में विरक्त जीवन बिताया था | उनके स्वर्गवास के दो महीनो बाद उनके सामान से पाई गई पांडुलिपि का ही प्रस्तुतीकरण यह उपन्यास है। उपन्यास में आवश्यकतानुसार स्थानों और व्यक्तियो के नाम बदले या कम कर दिए हैं। इससे पता चलता है कि यह उपन्यास बुआ-भतीजे के अद्‌भुत आत्मीय संबंधों की कथा है, जिसमें मृणाल बुआ के जीवन संघर्ष की अद्‌भुत कथा है।

१.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. त्याग-पत्र उपन्यास का प्रकाशन कब हुआ है?

उत्तर: १९३७

२. त्याग-पत्र उपन्यास की नायिका किस से प्रेम करती है?

उत्तर: सहेली शीला के भाई से।

३. त्याग-पत्र उपन्यास का पात्र प्रमोद किस पद से इस्तीफा देता है?

उत्तर: न्यायाधीश

४. त्याग-पत्र उपन्यास का पात्र प्रमोद उपन्यास के प्रारंभ में किस की समीक्षा को लेकर अपनी असमर्थता प्रकट करता है?

उत्तर: पाप-पूण्य की।

५. त्याग-पत्र उपन्यास की पात्र मृणाल की सहेली किस अध्यापक की कुर्सी की गद्दी में पिन चुभोकर रख देती है?

उत्तर: गणित विषय के अध्यापक।

६. त्याग-पत्र उपन्यास का पात्र किसके जीवन की कर्म कहानी वर्णन करता है?

उत्तर: अपनी बुआ की।

७. त्याग-पत्र उपन्यास के पात्र मृणाल और प्रमोद के बीच क्या रिश्ता था?

उत्तर: बुआ-भतीजे का रिश्ता।

१.९ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१. त्याग-पत्र उपन्यास के केंद्रिय पात्र प्रमोद की मनोदशा और मनोव्यस्था पर प्रकाश डालिए।

२. त्याग-पत्र उपन्यास की नायिका मृणाल बुआ की चारित्रिक विशेषताएं लिखिए।

३. त्यागपत्र उपन्यास की प्रमुख पात्र पर विस्तृत विवरण दीजिए।

४. त्यागपत्र उपन्यास की पृष्ठभूमि को समझाइए।

५. त्यागपत्र उपन्यास का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

*****

२

त्याग पत्र उपन्यास का शीर्षक, उपन्यास में चित्रित समस्याएँ और उपन्यास का उद्देश्य

इकाई की रूपरेखा

२.१ इकाई का उद्देश्य

२.२ प्रस्तावना

२.३ उपन्यास का शीर्षक

२.४ त्याग-पत्र उपन्यास में चित्रित समस्याएं

    २.४.१ रूढिवाद परिवार व्यवस्था में नारीवर्ग की भावनाओं की उपेक्षा की समस्या

    २.४.२ अनमेल विवाह की समस्या

    २.४.३ आर्थिक स्तर पर पराश्रयिता की समस्या

२.५ त्याग-पत्र उपन्यास का उद्देश्य

२.६ संदर्भ सहित व्याख्या

२.७ लघुत्तरी प्रश्न

२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.९ अध्ययन हेतु संदर्भ ग्रंथों की सूची

२.१ इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से छात्र निम्निलिखित मुद्दों से अवगत होंगे।

१. त्याग-पत्र उपन्यास के संदर्भ में रचना का शीर्षक तथा उसकी सार्थकता तथा समीक्षा का परिचय।

२. त्याग-पत्र उपन्यास में चित्रित मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक समस्याओं का परिचय।

३. उपन्यास तत्वों के आधार पर त्यागपत्र उपन्यास की समीक्षा तथा उद्देश्य का परिचय।

४. परिक्षा की दृष्टि से उपन्यास पर लघु तथा दीर्घोत्तरी प्रश्नों का स्वरूप।

५. त्यागपत्र के उपन्यास के विस्तृत अध्ययन हेतु संदर्भ ग्रंथों की सूची।

२.२ प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास का उद्भव और विकास आधुनिक काल में हुआ है। मुद्रण कला का अधिकार, लेखन सामग्री की सुलभता से उपलब्धता, पाश्चात्य साहित्य का देशीय भाषाओं में अनुवाद, आधुनिक काल में राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलनों का प्रभाव और नई शिक्षा पद्धति का प्रारंभ इन सबकी क्रिया प्रतिक्रिया के रूप में गद्य साहित्य का उद्भव

और विकास हुआ माना जाता है। हिंदी उपन्यास भी इसके लिए अपवाद नहीं है। हिंदी उपन्यास की परंपरा में इन सबका प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी उपन्यास का भले ही सवा सौ वर्षो से भी कम काल का रहा हो, किंतु उपन्यास का विकास जिस संख्यात्मक और गुणात्मक रूप में हुआ है उतना अन्य विधाओं का संभवत: नहीं है। हिंदी उपन्यास में जिस गति से कथ्य शिल्प और रचना शैली में परिवर्तन हुए उतनी गद्य की अन्य विधाओं में दिखाई नहीं देते। हिंदी उपन्यास में समय-समय पर कथ्य शिल्प में परिवर्तन होते हुए दिखरई देते हैं। इस परिवर्तन प्रक्रिया के प्रणेता के रूप में अनेक प्रतिभा संपन्न साहित्यकारों का हिंदी उपन्यास साहित्य में आविर्भाव हुआ। जैनेंद्र कुमार उनमें से एक उल्लेखनीय साहित्यकार रहे है।

इन्होंने हिंदी उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक परंपरा का आगाज किया, और उसमें सफल रहे।

इनके साहित्य में तत्कालीन समय की बदलती हुई परिस्थितियों के फल स्वरूप पात्रों के मानस में होने वाले अंतर्गत संघर्ष को शब्दबध्द किया गया है। इनके पात्रों के चित्रण में भौतिक गतिविधियों की अपेक्षा मानवीय मनोविज्ञान को अंकित करने का प्रयास किया गया है। 'त्यागपत्र' उपन्यास उनकी प्रतिनिधि रचना है, इस उपन्यास के केन्द्रिय पात्र प्रमोद के मानसिक संघर्ष और द्वंद्व के माध्यम से तत्कालीन समाज व्यवस्था की ओर संकेत किया गया है। आठ खंडों में लिखे गए इस उपन्यास में प्रारंभ से अंत तक प्रमोद के मानसिक द्वंद्व को शब्दबद्ध किया गया है। उपन्यास में चित्रित सामाजिक समस्याएं प्रमोद के मानसिक द्वंद्व को गतिशील बनाती हैं, और प्रमोद अपनी इसी सामाजिक समस्या की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित करता है। वैसे तो इसमें पारिवारिक स्तर तक की चुनिंदा समस्याओं की झलक दिखाई देती है, किंतु वे प्रमोद के मानसिक संघर्ष के पीछे छुपी हुई नजर आती है।

२.३ 'त्यागपत्र' उपन्यास का शीर्षक

शीर्षक रचना का प्रवेशद्वार होता है। काव्यशास्त्र की मान्यता नुसार शीर्षक संक्षिप्त, आकर्षक, जिज्ञासापूर्ण, कुतूहलतावर्धक तथा कथावस्तु का संकेत देनेवाला होना चाहिए। शीर्षक पढ़कर पाठक उपन्यास पढ़ने के लिए उत्सुक होना चाहिए। इन सभी दृष्टियों से शीर्षक का रचना के लिए अपना महत्व होता है। इसीलिए रचनाकार रचना के शीर्षक के संदर्भ में अधिक सतर्क, सचेत होता है। रचना की समीक्षा में शीर्षक का अपना महत्व होता। जैनेंद्र के प्राय: सभी रचनाओं के शीर्षक उपयुक्त मान्यता के अनुसार संक्षिप्त आकर्षक कुतुहलतापूर्ण और जिज्ञासापूर्ण दिखाई देते हैं। त्याग-पत्र उपन्यास भी इसके लिए अपवाद नहीं है।

'त्याग-पत्र' उपन्यास का शीर्षक उपयुक्त सभी मान्यताओं का निर्वाह करनेवाला शीर्षक है। त्याग-पत्र शीर्षक को पढ़ते ही पाठकों के मन में किसका, कैसा, और क्यों आदि प्रश्न उत्पन्न होते हैं। सिर्फ साडे चार शब्दों में इस शीर्षक की रचना हुई है। त्यागपत्र यह शब्द किसी गंभीर स्थिति का संकेत भी करता है, तथा इस उपन्यास में उत्पन्न हुई गंभीरता का संकेत देता है। इस तरह कलात्मक और भावात्मक दोनों दृष्टियों से यह शीर्षक सार्थक लगता है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र प्रमोद अपनी मृणाल (बुआ) को लेकर मानसिक संघर्ष

से गुजरते हुए उपन्यास की कथा के अंत में न्यायाधीश पद से अपने त्यागपत्र की घोषणा करता है। इस तरह उपन्यास की पूरी कथा में त्यागपत्र का संकेत और अंत में प्रत्यक्ष परिचय के माध्यम से त्यागपत्र शीर्षक सार्थक प्रतीत होता है। उपन्यास के अंत में प्रमोद की कहीं गयी अंतिम पंक्तियाँ –"अब सुनो मैं यह जजी छोड़ता हूं। जगत का आरंभ समारंभ ही छोड़ दूंगा। औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से सिखा न जाय। पुनश्च इसी के साथ अपनी जजी से अपना त्यागपत्र मैंने दाखिल कर दिया है।" यह अंतिम पंक्तियाँ पाठकों की जिज्ञासा का समाधान करती हैं।

त्यागपत्र उपन्यास का शीर्षक उपन्यास की कथा वहन करता है। केंद्रीय पात्र प्रमोद की मानसिक संघर्ष का कथा के अंत में एक अलग ढंग से समाधान प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत: यह त्यागपत्र प्रमोद के सिर्फ न्यायाधीश पद का त्याग पत्र नहीं है, बल्कि भौतक और पारिवारिक जगत के समस्त संबंधों का भी त्यागपत्र प्रतीत होता है। प्रमोद के अपनी मृणाल बुआ के जीवन संघर्ष से मन में उत्पन्न मानसिक द्वंद्व को भी इस त्याग पत्र के साथ त्याग देने का संकेत मिलता है। उपन्यास की कथा के मध्य में प्रमोद स्वयं कथा कहते कहते थक जाता है, किंतु त्यागपत्र की खबर देने के लिए कि वह मध्य से कथा के समाप्ति की ओर बढ़ता है। उपन्यास का शीर्षक त्यागपत्र तत्कालीन समाज में नारी समाज पर होने वाली उपेक्षा, प्रताइना, अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि का त्यागपत्र देने की तरफ भी संकेत करता है। इस तरह काव्यशास्त्र की मान्यता तथा कलात्मकता और भावात्मकता आदि सभी दृष्टियों से 'त्यागपत्र' शीर्षक सार्थक प्रतीत होता है, तथा अपनी सार्थकता का परिचय देता है।

२.४ त्यागपत्र उपन्यास में चित्रित समस्याएं

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में समाज की रूढ़ियों, परंपराओं, मान्यताओं, जीवन-यापन पद्धतियों तथा कथा से संबंधित समस्याओं का चित्रण होता है। इस तरह साहित्यकार अपनी कथा, पात्र, परिवेश, घटनाओं, और प्रसंगोंद्वारा अपने समय की समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चित्रण करता है। उपन्यास को ग़द्य का महाकाव्य माना जाता है। इस दृष्टि से उपन्यास में अपने समय को समाज की विविध परिस्थितियों का चित्रण विस्तार से किए जाने की गुंजाइश रहती है। उपन्यासकार इसका लाभ उठाते हुए अपने कथानक में मुख्य कथा के साथ अनेक उप-कथाओं के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण कर सकता है। उपन्यास को वास्तविक समाज का काल्पनिक चित्र माना जाता है। इसलिए उपन्यास में ग़द्य की अन्य विधाओं की तुलना में समाज का अत्यंत निकटता से चित्रण दिखाई देता है। उपन्यास अपनी रचना में अपने समाज के विविध समस्याओं का चित्रण करता है। विशेषता सामाजिक उपन्यासों में समाज के विविध समस्याओं का विस्तार से चित्रण दिखाई देता है। जैनेंद्र जी के उपन्यासों में सामाजिकता के स्थान पर मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का सूक्ष्म चित्रण दिखाई देता है। उनके उपन्यासों में सामाजिकता के स्थान पर बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न मानवीय मानस की द्वंद्वात्मक संघर्षशील मनस्थिति का चित्रण दिखाई देता है। जैनेंद्र ने मानवीय मानसिक संघर्ष का मूल कारण पात्रों से जुड़ी हुई बाह्य परिस्थितियों को माना है। जैनेंद्र के पात्र विशिष्ट बाह्य परिस्थिति में फंसकर आत्म केंद्रित हो जाता है, और अपने अंतर्मन में उत्पन्न संघर्ष, द्वंद्व और आत्म केंद्रित स्थिति की अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुत: पात्रों के मानसिक

संघर्ष का मूलाधार बाह्य परिस्थितियां होती हैं, यह परिस्थितियां असल में तत्कालीन समाज में उत्पन्न विविध समस्याएं ही होती हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक उपन्यास के पात्र, बाह्य परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप आत्म केंद्रित होकर आत्म संघर्ष में उलझे हुए दिखाई देते हैं। पात्रों की मानसिक स्थितियों का मूलाधार सामाजिक समस्याएं होती हैं। इस तरह लेखक पात्रों की मानसिक संघर्ष द्वारा समाज की विविध समस्याओं का चित्रण करता है। इस तरह जैनेंद्र की औपन्यासिक कृतियों में तत्कालीन समाज के विविध समस्याओं का चित्रण किया गया है।

त्यागपत्र उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया नायिका प्रधान उपन्यास है। उपन्यास की नायिका मृणाल (बुआ) के निरंतर संघर्षशील अभिशप्त जीवन की कर्म कहानी को कथा सूत्रधार तथा मृणाल बुआ का भतीजा प्रमोद विशिष्ट मानसिक संघर्षरत स्थिति में वर्णन करता है। उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक प्रमोद अपनी बुआ के जीवन संघर्ष की कथा वर्णन करता है। प्रमोद स्वयं को बुआ के अभिशप्त जीवन के लिए उत्तरदायी अनुभव करता है, और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को भी बुआ की अभिशप्त स्थिति के लिए जिम्मेदार मानता है। इस तरह प्रमोद, बुआ के अभिशप्त जीवन के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। लेखक ने बुआ के माध्यम से तत्कालीन समाज में दिखाई देनेवाली नारीजगत की विभिन्न समस्याओं को बुआ के अभिशप्त जीवन के माध्यम से उजागर किया है। प्रमोद बुआ की कर्म कहानी के माध्यम से त्यागपत्र उपन्यास में पारिवारिक स्तर से सामाजिक स्तर तक की नारी जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं का चित्रण करता है। त्यागपत्र उपन्यास में चित्रित समस्याएं निम्नलिखित हैं।

२.४.१ रूढिवादी परिवार व्यवस्था में नारी वर्ग की भावनाओं की उपेक्षा की समस्या:

भारतीय परिवार व्यवस्था भले ही विश्व में गौरवशाली व्यवस्था मानी जाती हो। पारिवारिक स्तर पर परिवार के सदस्यों के बीच घनिष्ठता आत्मीयता परस्पर समर्पण भाव जैसे परिवार के आदर्श गुण हो, किंतु पारिवारिक स्तर पर नारी के प्रति उपेक्षा भाव दिखाई देता है। पारिवारिक स्तर पर नारी का निर्णय सक्षम नहीं माना जाता। उसे केवल परिवार की इज्जत के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। उसकी मर्जी का कोई खयाल नहीं रखा जाता। तथाकथित पारिवारिक मान्यताओं, परम्पराओं, रूढियों का पालन उसके लिए पारिवारिक स्तर पर अनिवार्य हो जाता है। आज आधुनिक समाज में भी इसका प्रचलन दिखाई देता है। लेखक ने उपन्यास के पात्र मृणाल के माध्यम से पारिवारिक स्तर पर उत्पन्न नारी की इस गंभीर समस्या को अधोरेखित किया है। मृणाल मातृ-पितृ विहीन के रूप में अपने भाई-भाभी और भतीजे प्रमोद के साथ रहती है। उसका अपनी भाभी के साथ वही रिश्ता है, जो सदियों से भारतीय परिवारों में बना हुआ है। मृणाल के परिवार में उसके भाभी की निरंकुश सता होती है। जिसके फलस्वरूप मृणाल पर कठोर अनुशासन लगा होता है। जब मृणाल का अपनी सहेली शीला के भाई के साथ का प्रेम का मामला परिवार को पता चलता है, तब मृणाल का स्कूल जाना बंद कर दिया जाता है। उसे अपने प्रेम संबंध के कारण परिवार में शारीरिक और मानसिक यातनाएं दी जाती हैं। और अंत में किसी अधेड़ उम्र के विधुर के साथ उसका विवाह किया जाता है यतीम मृणाल पर कोई दया नहीं दिखाता। उसके जीवन का बड़ी कठोरता से निर्णय लिया जाता है। मृणाल ससुराल जाना नहीं चाहती है, किंतु

परिवार में से कोई मृणाल को ससुराल में न जाने की वजह तक नहीं पूछता है । उसे ससुराल जाने के लिए मजबूर किया जाता है । मृणाल की परिवार व्यवस्था के माध्यम से तत्कालीन समय में सनातनी भारतीय परिवारों में दिखाई देने वाली नारी के प्रति उपेक्षा का भाव समस्या का बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है । तत्कालीन समाज में पारिवारिक स्तर पर नारी की आशाओं इच्छाओं मनोरथों की अपेक्षा सामाजिक पूरानी परंपरा को अधिक महत्व दिया जाता था । इस तरह पारिवारिक स्तर पर नारी की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई थी । लेखक ने इस समस्या की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित किया है । वस्तुत: यह समस्या उपन्यास की केंद्रिय समस्या है ।

२.४.२ अनमेल विवाह की समस्या:

स्वतंत्र पूर्व हिंदी कथा साहित्य में अनमेल विवाह की समस्या पर अनेक उपन्यास लिखे गएहैं । जैनेंद्र ने 'त्यागपत्र' उपन्यास में तत्कालीन समाज की इस गंभीर समस्या और उसके दुष्परिणाम की ओर पाठकों का ध्यान केंद्रित किया है । जमींदारी प्रथा, बहुपत्नित्व की प्रथा, एकाधिकार शासन व्यवस्था तथा पूरूष प्रधान परिवार व्यवस्था आदि के कारण उत्पन्न अनमेल विवाह की समस्या तथा असके भीषण दुष्परिणाम का बड़ा ही ह्रदय स्पर्शी चित्रण इस उपन्यास में दिखाई देता है । मृणाल के प्रेम की सजा मृणाल का विवाह बन जाती है, और मृणाल के परिवार वाले मृणाल का विवाह किसी अधेड़ उम्र के विधुर व्यक्ति से कर देते है । तत्कालीन समाज में प्रचलित यह भीषण समस्या से नारी जीवन किस तरह है तबाह और बर्बाद हो जाता था, इसका ह्रदयस्पर्शी चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । मृणाल विवाह के समय से ही अपने पति से नफरत करती है, किंतु उसी पति के पास जबरदस्ती उसे भेज दिया जाता है । वैसे तो मृणाल के पति का चरित्र उपन्यास में चित्रित नहीं किया गया है, किंतु मृणाल और प्रमोद के संवादों द्वारा मृणाल के पति की कठोरता और पत्नी पर आधिपत्य जमाने की वृत्ति का परिचय मिलता है । विवाह उपरांत पत्नी के चरित्र पर लांछन लगाकर घर से निकालने तक ही पति का परिचय मिलता है । पति की कठोरता से मृणाल का वैवाहिक जीवन समाप्त हो जाता है । उसके बाद वह कटी पतंग की तरह परिस्थितियों से हिलकोरे खाती हुई वेश्या बस्ती तक पहुंच जाती है । इस तरह मृणाल की अभिशप्त वैवाहिक जीवन के माध्यम से लेखक ने अनमेल विवाह की गंभीर समस्या का चित्रण किया है ।

- **परिवारिक स्तर पर नारी को जीवन के अहम् निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रखे जाने की समस्या:**

भारतीय परिवार व्यवस्था में नारी के प्रति उदासीनता का भाव दिखाई देता है । परिवार में उसके स्थान, मान सम्मान को लेकर हमेशा से उपेक्षा की भावना दिखाई देती है । नारी जीवन के हर छोटे-बड़े निर्णय पारिवारिक स्तर पर पुरूष वर्ग द्वारा ही लिए जाते है । पुरूष वर्ग हमेशा से और इस पुरूषप्रधान व्यवस्था के लिए अनुकूल ही निर्णय लेता आ रहा है । इस निर्णय का भीषण परिणाम नारी को ही भुगतना पड़ता है । जीवन में विवाह जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णय के संबंध में नारी को पूछा तक नहीं जाता रहा है । त्यागपत्र उपन्यास में इसी पारिवारिक स्तर की समस्या को अधोलिखित किया गया है । त्यागपत्र उपन्यास के पात्र मृणाल के साथ भी ऐसा ही होता है । जीवनसाथी का चयन करने की बात तो दूर

मृणाल का विवाह ऐसे व्यक्ति के साथ किया जाता है जिससे वह नफरत करती है। विवाह के बाद भी मृणाल ससुराल जाना नहीं चाहती है, किंतु जोर जबरदस्ती से मृणाल को ससुराल भेज दिया जाता है। स्वतंत्रपूर्व काल की यह एक महत्वपूर्ण समस्या थी, जिसे लेखक ने सूचकता के साथ अधोरेखित किया है। मृणाल नारी सुलभ भावजगत में जगत में प्रेम विवाह के सपने देखती है, किंतु वास्तव में उसे अपने मन के विरूद्ध अधेड़ उम्र के विधुर से विवाह करना पड़ता है।

२.४.३ आर्थिक स्तर पर पराश्रयिता की समस्या:

स्वतंत्रपूर्व काल में भारतीय नारी की दुनिया चार दिवारी के अंदर होती थी। वह पूर्णत: आर्थिक दृष्टि से परिवार के पुरूष पर निर्भर होती थी। इसलिए उसे परिवार के मुखिया पुरूष के हर अच्छे बुरे आदेश का चुपचाप पालन करना पड़ता था। उपन्यास की नायिका मृणाल अपने घर परिवार से लेकर ससुराल तक के जीवन में आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर नहीं होती है। पति के घर से निकाल दिए जाने पर अपने पापी पेट की आग बुझाने के लिए उसे किसी कोयलेवाले की रखैल बनना पड़ता है। कोयलेवाले के त्याग देने पर वह कुछ समय के लिए स्कूल की अध्यापिका बनकर तथा आसपास के बच्चों की पढ़ाई लेकर आत्म निर्भर बनने का प्रयास करती है, किंतु वह सफल नहीं होती। अंतत: मृणाल को वेश्या बस्ती में शरण लेनी पड़ती है। इस तरह जैनेंद्र ने स्वतंत्रपूर्व काल की आर्थिक दृष्टि से परावलंबी होने की नारी समस्या को तथा उसके परिणामों को उद्धृत किया है।

इस तरह त्याग-पत्र उपन्यास में तत्कालीन पारिवारिक स्तर से लेकर सामाजिक स्तर तक उत्पन्न नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है।

२.५ त्याग-पत्र उपन्यास का उद्देश्य

साहित्य का उद्देश्य 'मनोरंजन करना' माना जाता है। किंतु साहित्य केवल मनोरंजन नहीं करता बल्कि मनोरंजन के साथ-साथ व्यक्ति और समष्टि का प्रबोधन और मार्गदर्शन करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को 'मनुष्य की सर्वोत्तम कृति' कहा है। वैसे तो साहित्य मानवीय अनुभूति की अभिव्यक्ति होता है। किंतु वह मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठान करने का प्रयास होता है। रचनाकार अपनी अनुभूति को संवेदना और भावना के माध्यम से तरह प्रस्तुत करता है कि वह साधारणीकरण को प्राप्त करती है। लेखक की अनुभूति पाठकों की अनुभूति से एकाकार हो जाती है। रचनाकार अपनी रचना में किसी न किसी उद्देश्य पूर्ति जरूर करता है। युग प्रवर्तक साहित्यकार मनोरंजन के साथ अपने युग का बोध कराता है। उसके साहित्य में उसका संपूर्ण युग समाविष्ट होता है। जैनेंद्र कुमार को भी युग प्रवर्तक साहित्यकार माना जाता है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के स्थान पर मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक विषय को लेकर मनोवैज्ञानिक साहित्य की परंपरा का विकास किया। जैनेंद्र कुमार के सभी उपन्यास सोद्देश्यपूर्ण उपन्यास है। इन्होंने अपने उपन्यास में जहां एक ओर मानवीय मानस की संघर्षशील स्थिति का चित्रण किया वहां दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की ओर भी संकेत किया है। 'त्याग-पत्र' उपन्यास उनकी इसी परंपरा का परिचय देने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास का केंद्रिय पात्र प्रमोद विशिष्ट आत्म संघर्ष में फंसकर, अपनी बुआ की मृत्यु से आहत

होकर आत्मग्लानि में अपनी नौकरी से त्यागपत्र देता है। पूरे उपन्यास में प्रमोद का मानसिक संघर्ष गतिशील होता है। प्रमोद बुआ की मृत्यु की खबर से आत्म केंद्रित होकर बुआ के बिताए गए जीवनपट को पाठकों के सामने रखता है। बुआ के जीवन को लेकर वह समझ नहीं पाता कि बुआ पापी थी या पुण्यवान थी। इसका निर्णय वह पाठकों पर छोड़ देता है। प्रमोद अपनी बुआ के बचपन से लेकर मृत्यु तक की प्रमुख घटनाओं को पाठकों के सामने रखते हुए स्वयं का बुआ के साथ होने वाला घनिष्ठ संबंध उजागर करता है। प्रमोद बुआ के जीवन की शोकांतिका के लिए जहां एक ओर खुद को अपराधी मानते अपराध बोध से त्यागपत्र देता है, वहां दुसरी ओर बुआ के जीवन की शोकांतिका के लिए पारिवारिक व्यवस्था से लेकर रूढ़ियों परंपराओं ओर सामाजिक व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करता है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से मृणाल बुआ के अभिशप्त जीवन संघर्ष से संबंधीत अनेक पहलुओं का चित्रण किया है। जैसे कि स्वयं की दायित्वहीनता, अपने पिता की रूढिवादिता, अपनी माता की आर्य समाज गृहिणी की अनुशासन व्यवस्था, मृणाल के जीवन में उत्पन्न विविध परिस्थितियां तथा स्वयं मृणाल की शंकाओं और प्रश्नों को उद्घाटित करने में लेखक सफल रहा है। लेखक ने उपर्युक्त मुद्दों के माध्यम से भारतीय आर्य समाज में पुरानी परंपराओं और मान्यताओं के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज व्यवस्था में पारिवारिक स्तर से लेकर सामाजिक स्तर पर व्यक्तियों के जीवन में होने वाली विविध समस्याओं को उद्घाटित किया है। इस तरह त्यागपत्र उपन्यास पात्रों के मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणात्मक चित्रण के साथ तत्कालीन समाज में उत्पन्न नारी जाति की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करने वाला सोद्देश्यपूर्ण उपन्यास है।

२.६ संदर्भ सहित व्याख्या- (उदाहरण सहित)

“हाँ चिड़िया। उसके छोटे छोटे पंख होते है, पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती है। क्यों रे कैसी मौज है। नन्ही-सी चिड़िया, नन्हीं सी पूँछ। मैं चिड़िया बनना चाहती हूं।”

प्रसंग: संदर्भ के लिए दिया गया अवतरण “त्याग-पत्र उपन्यास का गद्यांश है। इसके रचनाकार आधुनिक हिंदी साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक उपन्यासकार जैनेंद्र है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास में मृणाल नामक पीड़िता के जीवन संघर्ष की कथा का चित्रण किया गया है। त्याग-पत्र लघु उपन्यास है। ८ लघु खंडों में लिखे इस उपन्यास में स्वतंत्रपूर्व काल की भारतीय नारी के जीवन से जुड़ी हुई अनेक समस्याओं का उद्घाटन किया गया है। संदर्भ का अवतरण उपन्यास प्रथम खंड से लिया गया संवाद है। यह संवाद उपन्यास के दो महत्वपूर्ण पात्रो के बीच का संवाद है। यह उपन्यास के दो प्रमुख पात्र - एक कथा सूत्रधार प्रमोद और उपन्यास की नायिका मृणाल के बीच का संवाद है। उपन्यास की नायिका मृणाल यतीम है। उसके मां-बाप नहीं है। वह अपने भाई और भाभी के साथ अपने भतीजे प्रमोद के साथ रहती है। प्रमोद उससे केवल चार-पांच साल से ही छोटा है। पारिवारिक कठोर अनुशासन के बीच मृणाल और प्रमोद एक दूसरे के सच्चे मित्र और हितेषी बन जाते हैं। बुआ अपनी पढ़ाई लिखाई से लेकर स्कूल में हुई हर छोटी बड़ी घटना प्रमोद को बताती है, और प्रमोद भी बड़े लगाव से बुआ की बातें सुनता है। इस तरह बुआ और भतीजे के बीच घनिष्ठ आत्मीयता का संबंध विकसित हो जाता है। प्रमोद इस

आत्मीयता के संबंध को बुआ के साथ भी और बुआ के बाद भी निभाता हुआ दिखाई देता है। बुआ ऐसे ही एक फुर्सत के समय में संदर्भ के लिए दिया गया संवाद प्रमोद से कहती है।

व्याख्या: उपन्यास के प्रथम खंड में उपन्यास का केंद्रीय पात्र तथा कथा सूत्रधार प्रमोद अपने घर परिवार का परिचय देते हुए, घर में रहने वाली बुआ के साथ बिताए गए अनेक प्रसंगो, घटनाओं, अच्छे बुरे अनुभवों को पाठकों के सामने खोल कर रखता है। ऐसी ही एक घटना का वर्णन करते हुए वह अपने और बुआ के बीच हुए वार्तालाप का परिचय देते हुए बताता है कि एक बार बुआ ने उसे कहां था कि वह चिड़िया की तरह अपने पंख खोल कर आसमान में जिधर चाहे उधर उड़ना चाहती है। वह चिडिया बनना चाहती है। अर्थात वह अपने जीवन में आजाद होकर जीना चाहती है। वह अपनी जिंदगी को अपनी इच्छा से जीना चाहती है।

विशेष: संदर्भ के लिए दिया गया अवतरण मृणाल बुआ का संवाद है। इस संवाद द्वारा मृणाल बुआ का जीवन विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। मृणाल बुआ तत्कालीन समाज में नारी पर लगाए गए पारिवारिक सामाजिक बंधन से मुक्त होकर आजाद जिंदगी जीने की इच्छा प्रकट करती है।

मृणाल बुआ की स्वभावगत विशेषता के साथ, बुआ के जीवन विषयक स्वातंत्र्यप्रियता का सहज परिचय मिलता है।

- **संदर्भ सहित व्याख्या के संभावित प्रश्न:**

१. ‘बड़ों की आज्ञा सदा माननी चाहिए। सबका आदर करना चाहिए। सदा सच बोलना चाहिए। अच्छे लड़के ऐसे ही बनते हैं।’ (पृ.क्र.१२)

२. ‘प्रमोद सच्ची सच्ची कहूं तो मैं ही पराई हो गई हूं। तुम सब लोगों के लिए मैं पराई हूं। तेरी मां ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है।’ (पृ.क्र.१६)

३. ‘पर आन देखिएगा कि वहां पहुंचकर थोड़े दिनों में ही तबीयत हरी हो जाती है। और सच पूछिए तो छोटे-मोटे रोगों की परवाह करना उनकी परवरिश करना है। सौ दवाओं की एक दवा है बेफिकरी।’ (पृ.क्र.३८)

४. ‘फेल होने से ढरना चाहिए भाई। जो मन लगाकर शुरू में पढ़ते हैं वे ही आगे जाकर जिंदगी में कुछ करते हैं। समझे?’ (पृ.क्र.४०)

५. ‘यो तो यह कहानी आरंभ की है तो पूरी भी करनी होगी। जीना एक बार शुरू करके, मौत आकर छुट्टी ना दे दे तब तक, जीना ही होता है। बीच में छुट्टी कहाँ?’ (पृ.क्र.४५)

६. ‘बहुत कुछ जो इस दुनिया में हो रहा है वह वैसा ही क्यों होता है, अन्यथा क्यों नहीं होता - इसका क्या उत्तर है? उत्तर हो अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है’ (पृ.क्र.४५)

७. 'नियति का लेख बंधा है। एक भी अक्षर उसका यहाँ से वहाँ न हो सकेगा। वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं। पर विधि का वह अतर्क्य लेख किस विधाता ने बनाया है, उसका उसमें क्या प्रयोजन है-' (पृ.क्र.४५)

८. 'लीला तेरी है, जीते-मरते हम हैं। क्यों जीते, क्यों मरते हैं? हमारी चेष्टा प्रयत्न क्या है? क्यों है? .... पूछे जाओ, उत्तर कोई नहीं मिलता।' (पृ.क्र.४६)

९. 'बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ पढ़ा है। लेकिन वह सब झूठ है। सच इतना ही कि प्रेम के भार से भारी रहकर जो जीवन के मूल में पैठा है, वह धन्य है।' (पृ.क्र.४८)

१०. 'मानव चलता जाता है और बूंद-बूंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है। वही सार है। वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस-मणि है। उसी के प्रकाश में मानव का गति-पथ उज्वल होगा।' (पृ.क्र.४८)

११. 'जिंदगी है, चलती जाती है कौन किसके लिए थमता है? मरते हुए मर जाते हैं, लेकिन जिनको जीना है वे तो मुर्दों को लेकर वक्त से पहले मर नहीं सकते। गिरते के साथ कोई गिरता है? यह तो चक्कर है।' (पृ.क्र.५३)

१२. 'जिनको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूं। तन दे सकूगी। शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसा? दान स्त्री का धर्म है।' (पृ.क्र.६८)

१३. '....क्या होगा भगवान ही जानता हैं, क्या होगा। मुझे और कोई दूसरा आसरा नहीं है। पर भगवान अन्त्रयामी है, सर्वशक्तिमान है। मुझे कोई और आसरा क्यों चाहिए? ---' (पृ.क्र.७६)

१४. 'चला जाऊं उसे अपनी दुनिया में जहां वस्तुओं का मान बंधा हुआ है और कोई झमेला नहीं है। जहां रास्ता बना-बनाया है और खुद को खोजने की जरूरत नहीं है। जिज्ञासा जहां शान्त है। और प्रश्न अवज्ञा का द्योतक है।'

१५. 'मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूं। समाज टूटी की फिर हम किस के भीतर बनेंगे? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूं कि समाज से अलग होकर उसके मंगलाकाक्षाओं में खुद ही टूटती रहूं।' (पृ.क्र.८०)

२.७ लघुत्तरी प्रश्न

१. त्याग-पत्र उपन्यास का प्रमोद के परिवार में काम करनेवाले नौकर का नाम क्या था?

उत्तर: बंसी।

२. त्याग-पत्र उपन्यास किस शैली में लिखा गया है?

उत्तर: आत्मकथनात्मक शैली।

३. त्याग-पत्र उपन्यास की पात्र मृणाल पति के त्यागने के बाद किसकी रखैल बन जाती है?

उत्तर: कोयलेवाले की।

४. त्याग-पत्र उपन्यास की पात्र मृणाल अपने ससुराल में किसे जन्म देती है?

उत्तर: मृत कन्या को।

५. त्याग-पत्र उपन्यास की पात्र प्रमोद किस खबर से अस्वस्थ होकर मानसिक संघर्ष से पीडित होता है?

उत्तर: मृणाल बुआा की मृत्यु की खबर से।

६. त्याग-पत्र उपन्यास की पात्र नर्स मृणाल को किस धर्म को स्वीकार करने का आग्रह करती है?

उत्तर: इसाई धर्म को।

७. त्याग-पत्र उपन्यास कितने खंडों में लिखा गया है?

उत्तर: आठ खंडों में।

८. त्याग-पत्र उपन्यास के पात्र मृणाल बुआ उपन्यास के अंत में किस बस्ती में दिखाई देती है?

उत्तर: वेश्या-बस्ती में।

२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. त्याग-पत्र उपन्यास में चित्रित विविध सामाजिक समस्याओं की चर्चा कीजिए -

२. त्याग-पत्र उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए -

३. उपन्यास के तत्वों के आधार पर त्याग-पत्र उपन्यास की समीक्षा कीजिए -

४. त्याग-पत्र उपन्यास में चित्रित तत्कालीन समाज की रूढियों तथा परंपराओं का परिचय दीजिए -

५. त्याग-पत्र उपन्यास के पात्र प्रमोद के मानसिक संघर्ष पर प्रकाश डालिए -

६. त्याग-पत्र उपन्यास के पात्र प्रमोद का चरित्र चित्रण कीजिए -

७. त्याग-पत्र उपन्यास के आधार पर जैनेंद्र कुमार की औपन्यासिक रचनाओं की विशेषताएं लिखिए -

८. त्याग-पत्र उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए -

२.९ अध्ययन हेतु संदर्भ ग्रंथों की सूची

१. त्याग-पत्र (उपन्यास)- जैनेंद्र -हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर मुंबई

२. जैनेंद्र उपन्यास और कला-डॉ.विजय कुलश्रेष्ठ-पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर

३. जैनेंद्र के कथा साहित्य में युग चेतना- अजय प्रताप सिंह-इलाहाबाद विश्वविद्यालय

४. जैनेंद्र के उपन्यासों का शिल्प- ओमप्रकाश शर्मा

५. जैनेंद्र का जीवन दर्शन-कुसुम कक्कड

*****

३

मुक्तिबोध उपन्यास विवेचन, विशेषताँए और सामाजिक संदर्भ

इकाई की रुपरेखा

३.१ उद्देश्य
३.२ प्रस्तावना
३.३ उपन्यास का कथानक
३.४ मुक्तिबोध उपन्यास का तत्वों के आधार पर विवेचन
३.५ मुक्तिबोध उपन्यास की विशेषताँए
३.६ मुक्तिबोध उपन्यास का सामाजिक सन्दर्भ
३.७ सन्दर्भ सहित व्याख्या
३.८ लघुउत्तरीय प्रश्न
३.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न
३.१० बोध प्रश्न
३.११ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें
३.१२ सारांश

३.१ उद्देश्य

मुक्तिबोध उपन्यास के कथानक के बारे में समझाना। उपन्यास के तत्वों के आधार पर उसका विवेचन-विश्लेषण करना। मुक्तिबोध उपन्यास की विशेषताओं के बारे में समझाना। उपन्यास के सामाजिक सन्दर्भों को स्पष्ट करना। मुक्तिबोध उपन्यास में निहित सामाजिक समस्या के बारे में समझाना।

३.२ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में गहन मानवीय संकट की बात मध्ययुगीन परिवेश में भी उठाई गई थी। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार होने के बावजूद जैनेन्द्र ने प्रचलित परम्पराओं और मान्यताओं से हिन्दी उपन्यास को मुक्त करके उसे आधुनिकता के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। प्रेमचंद समाज के भीतर जी रहे पात्रों को लेकर सामाजिक समस्याओं को वाणी प्रदान कर रहे थे, लेकिन जैनेन्द्र कुमार ने व्यक्ति के मन का संघर्ष व्यक्त कर वैयक्तिक जीवन की समस्याओं को वाणी प्रदान की। इसलिए युगीन संदर्भो की दृष्टि से एक नयी विचारधारा की प्रस्थापना आधुनिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा सकती है।

३.३ उपन्यास का कथानक

जैनेन्द्र कुमार ने मुक्तिबोध शीर्षक उपन्यास में परम्परागत कथानक के अन्तर्गत आकस्मिकता और कौतूहल की स्थितियों को न अपनाते हुए उसके कथानक को बड़े ही सहज ढ़ंग से मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों के माध्यम से आगे बढ़ाया है, जिससे इस उपन्यास की प्रभावान्विति और भी ज्यादा बढ़ जाती हैं। स्वयं जैनेन्द्र कुमार का ही मानना है कि इस विश्व के छोटे से छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं, उनके माध्यम से हम सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रम्हाण्ड में है वही पिण्ड में भी है। इसलिए जैनेन्द्र कुमार जी ने 'मुक्तिबोध' उपन्यास के पात्रों का मनोविश्लेषण कर उनकी वैयक्तिकता को ही महत्वपूर्ण माना है। साथ ही साथ आत्मार्पण और प्रेम को वैयक्तिक और सामाजिक सुधार की बुनियाद माना है। 'मुक्तिबोध' शीर्षक उपन्यास में राजनीति से त्रस्त सहाय के राजनैतिक जीवन से मुक्ति के संघर्ष को दिखाया गया है।

जैनेन्द्र का उपन्यास 'मुक्तिबोध' सन् १९६५ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास पर जैनेन्द्र कुमार को साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। इसके प्रमुख पात्र सहाय, उसकी पत्नी राजश्री और सहाय की प्रेमिका नीलिमा है। राजश्री खुले विचारो की स्त्री है, वह सहाय की प्रेमिका से बिल्कुल भी नहीं चिढ़ती है, वरन् उससे हमेशा खुश ही रहती है। उपन्यास के नायक सहाय को मंत्री पद दिया जा रहा है, जिसे वे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। सहाय के इस निर्णय से उसके समस्त स्वजन और परिजन नाराज हो जाते हैं, क्योंकि मंत्री बन जाने से सबके स्वार्थ की पूर्ति आसानी से हो सकती है। सहाय का जामाता उद्योगपति है, उसकी कई मीलें है, एक नई मील भी स्थापित होने वाली है। उसके खिलाफ जाँच चल रही है। मंत्री बनने पर जामाता को सारी सरकारी सुविधाएँ सुलभता से प्राप्त हो जाएँगी। सहाय जानते हैं और इसी कलंक से बचने के लिए वे इस पद को लेने से इनकार कर देते हैं। वे घर में किसी की भी बात नहीं सुनते हैं। यहाँ तक कि पत्नी राजश्री और प्रेमिका नीलिमा के अनुरोध को भी वे ठुकरा देते हैं।

आगे चलकर जैनेन्द्र के इन पात्रों के भीतर गाँठ पड़ जाती है, जो उसे मंत्री का पद लेने से रोकती है। नीलिमा इस गाँठ को खोलने का प्रयत्न करती है। सहाय यह मानता है कि राजनीति हमेशा से अनीति पर ही चलती आई है। उस अनीति को देखकर वह उसमें बिल्कुल भाग नहीं लेना चाहता है। राजश्री, नीलिमा औव अन्य पारिवारिक जन इसे सहाय की खोजली आदर्शवादिता मानते हैं, बावजूद इसके सहाय इन सबसे कतई सहमत नहीं होता है। इस उपन्यास में आगे चलकर उसकी बेटी अंजलि की स्थिति काफी खराब होने लगती है। इतने सारे पारिवारिक और भावात्मक दबाव के आगे अन्ततः सहाय झुक जाता है और न चाहते हुए भी मंत्री पद स्वीकार कर लेता है। अब उसके शेष परिवार वाले प्रसन्न हैं, परन्तु 'मुक्तिबोध' उपन्यास का नायक सहाय ही प्रसन्न नहीं है। वह आत्मपीड़ा जैसी स्थिति में आ जाता है। यही तो जीवन की गति है। बहुधा हम ऐसे काम करते जाते हैं। जो हम कभी नहीं करना चाहते हैं। इस उपन्यास का अन्त भी इस घोषणा से होता है कि 'मैं मिनिस्टर हो गया हूँ'। अब हम इसे सुखात्मक अन्त कहें या दुखात्मक यह हमेशा अनिर्णय की स्थिति में ही रहता है। इस प्रकार जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासो में व्यक्ति का जीवन ही अधिक महत्वपूर्ण है।

३.४ मुक्तिबोध उपन्यास का तत्वों के आधार पर विवेचन

मुक्तिबोध उपन्यास का कथातत्व प्रेम और विवाह से संबंधित प्रश्नों से ही नहीं है, फिर भी उसके वातावरण, उद्देश्य और चरित्र चित्रण में प्रेम और विवाह संबंधी धारणाओं का स्पष्ट प्रतिफलित है। मुक्तिबोध में राजनीति के सक्रिय सांसद सहाय का राजनैतिक जीवन से मुक्ति के भाव को लेकर संघर्षों को दिखाया गया है। जैनेन्द्र कुमार विवाह को एक अनिवार्य तत्व तथा पत्नीत्व की संस्था को अर्थयुक्त आवश्यकता मानते हुए पत्नी को सिर्फ पत्नी ही बने रहते देना जाहते हैं। साथ-साथ पति की दुश्चिंतताओं को दूर करने, उसे मानसिक सुख शांति देने अथवा आकस्मिक स्फूर्ति देने के लिए एक प्रेमिका को ही अनिवार्य तत्व के रुप में मानते हैं जो अविवाहित हो अथवा विवाहित हो। मुक्तिबोध उपन्यास में चौवन वर्ष के सहाय के भरे-पूरे परिवार के होते हुए भी सहाय का नीलिमा के साथ प्रेम-संबंध बना हुआ है। पूरा परिवार नीलिमा को परिवार की हितैषिणी के रुप में देखता है। कथातत्व की दृष्टि से विवाह के पश्चात् पति-पत्नी औरतो में संबंध बना रहे, इसलिए उदारता भी अत्यावश्यक है। नीलिमा और उसके संबंधों का विश्लेषण नीलिमा स्वयं करते हुए कहती है- 'वह अपने को आजाद रखते हैं, और मैं इसमें उनकी सहायता करती हूँ। इसी मे मेरी आजादी अपने आप बन जाती है। अपने से पूछो, मेरी आजादी का श्रेय क्या तुम दर को दोगे, मुझे नहीं दोगे।'

'मुक्तिबोध' उपन्यास की नायिका राजश्री पत्नीत्व के परम्परित आदर्शों का प्रतीक है। वह पतीत्व में सर्वस्व खोजती है। परन्तु पत्नीत्व असफल है। उसका पति सहाय सिर्फ और सिर्फ नीलिमा की ओर ही आकृष्ट है। राजश्री का पती बड़ा विवश, दुर्लभ, स्वतंत्र व्यक्तित्व हीन, परावलम्बी एवं निर्जीव सा चित्रित हुआ है। उपन्यास के तत्वों के आधार पर यदि विवेचन-विश्लेषण किया जाए तो जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास के प्रतिनिधि पात्र 'स्त्री' को ही बनाया है, तथा नायक के स्थान पर मैं की ही प्रतिष्ठा की गई है। नारी 'मुक्तिबोध' जैसे उपन्यासों में पुरानी परम्परा से हटकर यथार्थ की और मुड़ने का प्रयत्न करती देखी जाने लगी है। 'मुक्तिबोध' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया एक लघु उपन्यास भी है। आत्मविश्लेषण परक शैली में लिखा गया यह पहला एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें लेखक नायक सहाय और उसके पारिवारिक सदस्यों की चर्चा भी इसमें की गई है। इसमें राजनीति के सक्रिय सांसद सहाय का राजनैतिक जीवन से मुक्ति के भाव को लेकर संघर्ष दिखाया गया है। समसामायिक तत्वों के बोध से अनुप्रेरित इस उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद के पन्द्रह वर्षों में खींचातानी, आदर्श के प्रतिउत्सर्ग की भावना, मंत्री पद हेतु स्वाभाविक ममत्व के संघर्ष की अनुभूति का बड़ा ही यथार्थ निरुपण उपन्यास के प्रमुख तत्वों की दृष्टि से कथाकार जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास 'मुक्तिबोध' में बड़ी बारीकी के साथ किया है।

३.४.१ 'मुक्तिबोध' उपन्यास की विशेषताँए:

'मुक्तिबोध' उपन्यास की सबसे बड़ी किन्तु महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि-

१) यह 'आत्मकथात्मक शैली' में लिखा गया एक लघु उपन्यास है। रेडियो प्रसारण के लिए लिखी गई इस रचना को 'साहित्य अकादमी' नई दिल्ली द्वारा पाँच हजार रुपए का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

२) आत्मविश्लेषण शैली में लिखा गया जैनेन्द्र कुमार का यह पहला उपन्यास है, जिसमें लेखक, नायक, सहाय औव उसके पारिवारिक सदस्यों की चर्चा भी विस्तृत रुप से हुई है।

३) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में सहाय जैसे राजनीति के सक्रिय सांसद का राजनैतिक जीवन से मुक्ति के भाव को लेकर संघर्ष को भी बखूबी दिखाया गया है।

४) समसामयिक बोध से अनुप्रेरित जैनेन्द्र जी के 'मुक्तिबोध उपन्यास' में स्वतंत्रता के बाद के पन्द्रह वर्षों में खींचातानी, आदर्श के प्रति उत्सर्ग की भावना, मंत्री पद हेतु स्वाभाविक ममत्व के संघर्ष की अनुभूति का निरुपण इस उपन्यास में हुआ है।

५) भारत की केन्द्रीय शक्ति में एक समय विशिष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव की गई और परिणाम स्वरुप 'कामराज योजना' आरम्भ हुई थी, जिसमें मंत्री पद से त्यागपत्र देने की स्थिति आवश्यक समझी गई थी।

६) कथानायक सहाय कामराज योजना के अन्तर्गत आदर्शवाद एवं अहंवाद के कारण मिले हुए अपने पद को अस्वीकृत कर देता है। फिर भी उच्चशक्ति उसे मंत्री पद दे रही है।

७) जैनेन्द्र के 'मुक्तिबोध' उपन्यास में अन्य उपन्यासों की तरह प्रेम और विवाह से संबंधित प्रश्न नहीं है। केवल एक राजनीतिज्ञ जीवन से उठी दुविधा के माध्यम से मुक्ति के बोध का विश्लेषण 'मुक्तिबोध' का कथ्य है।

८) 'मुक्तिबोध' उपन्यास के वातावरण एवं चरित्र निर्माण में जैनेन्द्र जी की प्रेम और विवाह संबंधी धारणाओं का स्पष्ट प्रतिफलन है।

९) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में मुख्य पात्र, सहाय के अलावा, पत्नी राजश्री, निलिमा, कुँअर, ठाकूर, विक्रम, विरेश्वर और सहाय की बेटी अंजलि इत्यादि प्रमुख पात्र हैं।

१०) सहाय का पारिवारिक जीवन दुविधापूर्ण है। क्योंकि न तो वे सामाजिक बंधनों को तोडकर पत्नी से ही मुँह मोड़ सकते है, और न ही वे नीलिमा के प्रति अपने प्रेम पूर्ण हृदय का गला ही घोट सकते हैं।

११) सहाय पत्नी और प्रेमिका के बीच हिचकोले खाने वाला ऐसा व्यक्तित्व है, जो सामाजिक मर्यादाओं को जानते हुए भी प्रेमिका के प्रति ढ़लते रहने के कारण संघर्षरत हैं।

१२) सहाय अपनी पत्नी राजश्री और ठाकुर महादेव सिंह के बीच पनप रहे प्रेम के कारण हीन भावना से ग्रस्त है, फिर भी वे उन दोनो के बीच बाधा नहीं बनना चाहते हैं।

३.६ मुक्तिबोध उपन्यास का सामाजिक सन्दर्भ

जैनेन्द्र के उपन्यास 'मुक्तिबोध' में विवाहेत्तर प्रेम संबंधो को बाँधे रखने में कथाकार का सामाजिक भाव यहाँ कारण के रुप में विद्यमान है, जो विवाह में प्राप्त नहीं होता वह

अलौकिक आनन्द में प्राप्त होता है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजश्री, नीलिमा के प्रेमिका रुपी शक्ति से भली भाँति परिचित है। पति के सोए हुए ईश्वरीय भाव को वह प्रेयसी नीलिमा के सामाजिक संबंधो के सहारे ही जगाना चाहती है। सहाय जी जहाँ मंत्री पद से त्यागपत्र देना चाहते हैं, उनमें कर्म के प्रति आस्था का संचार प्रेमिका नीलिमा ही करती है। सामाजिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष संबंधो में व्यक्त संघर्षों में एक तरफ जहाँ बुद्धि का संघर्ष होता है, तो वहीं दूसरी तरफ भावना का बौद्धिक धरातत्व पर पात्र परिस्थितियों से सामाजिक रुप से टक्कर लेता है। किन्तु यहाँ सामाजिक भावना की प्रबलता इतनी तीव्र होती है कि भावना की विजय पर पीड़ा का अनुभव भी सामाजिक दृष्टि से होने लगता है।

नीलिमा मिस्तर दर साहब की पत्नी होते हुए भी वह सहाय से प्रेम करती है। सामाजिक जीवन संदर्भों में अन्ततः दूध का दूध पानी का पानी हो जाता है। पत्नियाँ अपने प्रेमियों को छोड़कर अपने अपने गृहस्थ जीवन में लौट जाती हैं। मिस्टर सहाय को मंत्री पद स्वीकृत करने के लिए मजबूर करती नीलिमा भी अपने गृहस्थ जीवन में लौट आती है। सामाजिक दृष्टि से 'मुक्तिबोध' उपन्यास में पति-पत्नी के आत्मिक संबंधों की अपेक्षा प्रेमिका के संबंध को अधिक गहन माना गया है। राजश्री सहाय की पत्नी होते हुए भी नीलिमा के प्रेयसी रुप को स्वीकार करती है। जब-जब वह अपने पति सहाय को उद्विग्न देखती है, तब-तब वह सहाय को नीलिमा के पास भेज देती है।

सहाय को जब अपने जीवन में रिक्तता महसूस होने लगती है, अपनों से अपनत्व टूटता दिखाई देने लगता है, बावन्न वर्ष की अवस्था में जब वे अकेलापन महसूस करते हैं तब पत्नी राजश्री को समझाते हैं। यदि जीवन में से प्यार गया तो हमारे पास क्या रह जाएगा, प्यार के बिना जीवन व्यर्थ है। इस उम्र में हम केवल माया और ममता में पडे रहेंगे तो हमारी क्या गति होगी। पुरुष के जीवन में पत्नी सामाजिक जीवन की पूर्णता एवं प्रेयसी आत्मिक तृप्ति का माध्यम है। इसलिए नीलिमा से जो आत्मीय स्फूर्ति सहाय को मिलती है, वह राजश्री से नहीं, और सहाय के मित्र ठाकूर को मित्र की पत्नी राजश्री भाभी ही अधिक निकट मालूम पडती है। डॉ. वांदिववडेकर के विचारों से -"नीलिमा तो प्रेयसी ही है और जो पति को पत्नी से नहीं मिला, वह सहाय को नीलिमा में मिला। रस, सौन्दर्य, समान स्तर पर स्थित उत्कट बंधन रहित प्रेम। यहाँ भी उन दोनों के संबंधो का आधार काम, वासना, शरीर मात्र ही नहीं है। वह है जरुर, पर उतना ही जिससे स्त्री-पुरुष के संबंध मांसल और रसवान बनते हैं। अधिकतर दोनों में वह उच्च मानसिक या आत्मिक संबंध हैं जो शरीर के माध्यम से ही परन्तु ऊपर चढ़कर विलक्षण चैतन्य प्रदान करनेवाले हो जाते हैं और जिन्हें स्थूल प्रचलित शब्दों से परिभाषित नहीं किया जा सकता – काम, प्रेम बन जाता है।" सामाजिक जीवन में परिवार के प्रत्येक व्यक्ति पर परिवार का पूरा अधिकार होता है, व्यक्ति के प्रत्येक फैसलो पर परिवार की अनुमति न हो तो विरोध खड़ा हो उठता है। मि. सहाय मंत्री पद पर प्रतिष्ठित हैं, समाज में उनका बड़ा ही ऊँचा स्थान हैं, पर अपने सिद्धान्तों और आचरण पर कायम रहें तो परिवार वालों के लिए मुश्किल खडी होने लगती है। सहाय को उनके परिवार वालो ने स्वार्थवश ही घेर रखा हैं। यदि सहाय जी मंत्री पद से त्यागपत्र दे दें तो दामादजी के उद्योग का क्या होगा? इसलिए वीरेश्वर को इन्डस्ट्रीज में रखने का प्रस्ताव रखते हैं। बेटी अंजलि भी शिकायत करती है कि आपके मंत्री पद से हमें क्या लाभ ? हमारे लिए सारी उमर पडी है।

अपने सामाजिक सिद्धान्तों पर कायम रहने वाला सहाय की वीरेश्वर शिकायत करता है। वह नीलिमा से कहता है- 'आप मेरा कष्ट नहीं समझेगी आंटी इनका नाम है, और मैं इनका बेटा समझा जाता हूँ। और बाहर सब इनके नाम के हिसाब से मुझे नापते हैं, और मैं छोटा बन जाता हूँ, और लौटकर अपनी भीड़ में आ जाता हूँ।'

यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों के अन्तर्गत जैनैन्द्र कुमार की दृष्टि से परिवार में पुरुष के जीवन में प्रेयसी का स्थान महत्वपूर्ण है। भले ही सामाजिक दृष्टि से न हो। नीलिमा सहाय की प्रेयसी के रुप में होते हुए भी पारिवारिक-सामाजिक समस्याओं के लिए मजबूर करती है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजनीति से मुक्ति पाने की कशमकश मिस्तर सहाय में है। सहाय जी एक मंत्री होने के नाते उनसे उनके परिवार वाले सगे संबंधी, मित्र सभी स्वार्थवश कुछ न कुछ लाभ तो जरुर उठाना चाहते है। उन सबकी दृष्टि में महत्व सहाय का नहीं, उनके मंत्रीत्व पद का है। इसी कुण्ठा के कारण सहाय मंत्री पद से त्यागपत्र देना चाहते है। सहाय और राजश्री के दाम्पत्य जीवन में, नीलिमा प्रेम पर अपना एकाधिकार रखती है, पर राजश्री से उसको कोई शिकायत नहीं है। वह पारिवारिक जिम्मेवारी और दुखों को ढोकर नीलिमा को सहाय की प्रेरणा मानकर उन्हे सुलझाने का पूरा अवसर देती है। वास्तव में सामाजिक मर्यादाओं के कारण वह न तो नीलिमा के कारण राजश्री का हो पाता है और न राजश्री के कारण नीलिमा का। राजश्री समझदार और कुशल पत्नी होने से सहाय के दोहरे जीवन की गृहस्थी बडी शालीनता औह कुशलता से चलाती है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजश्री जैसी सुन्दर, सुशील, पत्नी, बेटी अंजलि और बेटा वीरेश्वर, दोनो वयस्क होते हुए भी सामाजिक बंधनों को त्यागकर सहाय, नीलिमा जैसी स्वच्छन्द प्रकृति वाली युवती के सौन्दर्य रुपी आकर्षण में बँध जाते है। नीलिमा के दर्शन मात्र से ही उसमें स्वतः स्फूर्ति का संचार होने लगता है। नीलिमा के आकर्षण में कही न कहीं चुंबकीय वैशिष्ट्य अवश्य है।

३.७ सन्दर्भ संहित व्याख्या

संकेत:

काफी जिन्दगी में चला आया हूँ। क्या चाहता था मैं जब यह जिन्दगी खुली? यूनिवर्सिटी से निकला और देश के काम में पड़ गया। देश को आजाद होना था, लेकिन सच यह था, अब देखता हूँ कि मुझे आजाद होना था। घर-गृहस्थी की जिन्दगी बंधी जैसी होती है। आजादी के आन्दोलन में पड़कर लगा कि मैं बँधा नहीं हूँ, खोल रहा हूँ और खुल रहा हूँ। वहाँ से क्या-कैसे मोड़ खाता हुआ मेरा जीवन अब यहाँ तक आया है। इसकी बात आगे हो सकती। लेकिन क्या अब भी अनुभव हो सका है मुझे उसका कि जिसे मुक्ति कहते है? मैं जानना चाहता हूँ कि मुक्ति का वह बोध क्या है? वह परिस्थितिक है या नहीं। आत्मिक है या....?

सन्दर्भ:

प्रस्तुत गद्यांश साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत रचनाकार और मनोविश्लेषणवादी कथाकार जैनेन्द्र के अति चर्चित, लोकप्रिय उपन्यास 'मुक्तिबोध' से उद्धृत है। 'मुक्तिबोध' रचना पर ही जैनेन्द्र कुमार को साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त हुआ है। उपरोक्त पंक्तियाँ 'मुक्तिबोध' शीर्षक उपन्यास के पृष्ठ संख्या तेरह से ली गई हैं।

व्याख्या:

कथाकार जैनेन्द्र कुमार इन पंक्तियों के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न करते है कि हम भी अपने जीवन में अक्सर किसी सपने के पीछे ही भागते हैं। लेकिन भागते-भागते जब हम उसे हासिल कर लेते हैं, और देखते है कि हमने आखिर क्या खोया और क्या पाया। तो अन्ततः हम यही पाते हैं कि हम खुद (स्वयं) को ही कहीं खो चुके हैं। वह सपना हमें कभी वो सुख नहीं प्रदान करता जिस सपने की हमने कभी उम्मीद की थी। यही बात हम इस उपन्यास के नायक सहाय जी के साथ भी देखते हैं। इसके अलावा जब कभी आपके पास ताकत आती है, तो आपके आस-पास कई लोक एकत्रित हो जाते हैं। भले ही आप खुद अच्छे हो, लेकिन ऐसे कई लोग जिसमें अपने और पराए दोनों होते हैं, वही आपके साथ आते हैं, जिनका स्वार्थ, सिर्फ और सिर्फ आपकी ताकत में ही निहित होता है। ऐसे में किस पर विश्वास करना है, और किस पर विश्वास नहीं करना है, शायद यहीं निर्णय कर पाना हमारे लिए बहुत कठिन हो जाता है। ये सारी चीजे और समस्त जानकारी हमें जैनेन्द्र जी के उपन्यास 'मुक्तिबोध' के पात्रों यथा सहाय राजश्री और नीलिमा के माध्यम से देखने को मिलती है। कई बार हमारे नाते-रिश्तेदार ही अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए हमारा भरपूर इस्तेमाल करते हैं। कई बार तो बाहर के लोग ही ऐसे होते हैं जो हमारे सच्चे हितैषी बनकर हमेशा हमारी सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसे समय में हमें इन दोनों ही हितैषियों के रिश्तों के बीच एक सामंजस्य बनाने की जरुरत पड़ती है। यहीं जैनेन्द्र कुमार के इस उपन्यास का प्रमुख ध्येय रहा है। इस उपन्यास के पात्रों के बीच में भी समीकरण बड़ा ही रुचि कर बन पड़ा है। उपन्यास का क्लेवर देखने में भले ही बहुत होता है, लेकिन रिश्तो के अन्वेषण के लिहाज से बहुत बड़ा मालूम पड़ता है। फिर भी जितना कुछ भी है, वह रुचिकर है, और इन महत्वपूर्ण विषयों पर सोचने को विवश करता है।

३.८ सारांश

'मुक्तिबोध' उपन्यास में कथाकार जैनेन्द्र ने राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर वैश्विक मानवतावाद की भावना को व्यक्त किया है। आज भौगोलिक सीमाओं के आधार पर विश्व विविध देशो और प्रांतो में विभक्त हो गया है। परन्तु विश्व के किसी भी कोने में बसने वाले मनुष्य के अस्तित्व को उसके मानवीपन को कभी भी नहीं बाँटा जा सकता है, क्योंकि इंसान तो आखिर इंसान ही होता है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास के प्रमुख पात्र सहाय आर्टिस्ट तमारा को इसी बात को समझाते हुए कहते हैं- 'क्यों समझती हो कि देश के आगे मैं सत्य को नहीं मान सकता हूँ? तुम रुसी हो मैं हिन्दुस्तानी हूँ। पर सच मे तो दोनो इंसान ही हैं। यह मानने में क्यों मुझे मुश्किल होनी चाहिए।'

'मुक्तिबोध' उपन्यास राजनेताओं के इर्द-गिर्द खूमता है तो इसमें क्या-क्या गठ जोड़ होता है यह भी देखने को मिलता है। उपन्यास हर दृष्टियों से पठनीय है। मुख्य किरदार के पशो पेश को यह बखुबी दिखलाता है। हम मुक्ति की तलाश में होते है लेकिन शायद ही हमें यह मुक्ति मिल पाती हो। जब तक हम हैं तब तक अपने कर्मो को करते जाने में ही मुक्ति है। कर्म से भागना भी कायरता है। शायद इसी बात को 'मुक्तिबोध' उपन्यास भी दर्शाता है। अन्त में लेखक ही इस उपन्यास में कहता है कि जग का जंजाल कभी खत्म होने के लिए

नहीं होता है। परम्परा विस्तृत होती चली जाती है, कि सब अन्त में मुक्ति में पर्यवसान पाएँगे। अर्थात् मुक्ति और सृष्टि परस्पर समन्वित (लगा हुआ) शब्द है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते है कि जैनेन्द्र के मुक्तिबोध शीर्षक उपन्यास के केन्द्र में मानव और मानवतावाद रहा है, और इसी मानवतावाद के केन्द्र में वे मानव की मनोवृत्तियों एवं उनके क्रियाकलापों को दिखाकर मानव मन की दुर्वृक्तियों को परिष्कृत करने और सद् मार्ग पर लाने के लिए वे हमेशा प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। जैनेन्द्र जी अपने मुक्तिबोध उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों को एक नया आयाम देते हैं, और यह आयाम है मनोविज्ञान का। जैनेन्द्र ने घर और बाहर की समस्या को नारी पात्रों के माध्यम से उठाया है कि घर और बाहर के सम्पर्क में आने के बावजूद घर टूटता नहीं बल्कि और भी सुदृढ होता है।

३.९ लघुउत्तरीय प्रश्न

१. 'मुक्तिबोध' उपन्यास के कथानक को संक्षेप में लिखिए।

२. 'मुक्तिबोध' उपन्यास के प्रमुख तत्वों को संक्षेप में स्पष्ट किजिए।

३. 'मुक्तिबोध' उपन्यास के प्रमुख पात्र सहाय का चरित्र-चित्रण किजिए।

४. उपन्यास में विवेचित पंक्तियों की सन्दर्भ सहित व्याख्या किजिए।

५. 'मुक्तिबोध' उपन्यास में आए नैतिक विचारो को स्पष्ट किजिए।

३.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. 'मुक्तिबोध' उपन्यास की कथावस्तु को विस्तार से समझाइए।

२. 'मुक्तिबोध' उपन्यास का तात्विक विवेचन किजिए।

३. 'मुक्तिबोध' उपन्यास की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट किजिए।

४. 'मुक्तिबोध' उपन्यास के सामाजिक सन्दर्भों पर प्रकाश डालिए।

३.११ बोध प्रश्न

१. जैनेन्द्र कुमार का पहला उपन्यास कौन सा है?

२. जैनेन्द्र कुमार को उनके किस उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था?

३. जैनेन्द्र कुमार का अन्तिम उपन्यास कौन सा है?

४. सहाय और नीलिमा के बीच कैसा संबंध है?

५. राजश्री का सहाय से क्या रिश्ता है?

६. 'मुक्तिबोध' उपन्यास में अंजलि कौन है?

७. 'दर साहब' और 'नीलिमा' के बीच क्या रिश्ता है?

३.१२ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तके

१. आज का हिन्दी उपन्यास- इन्दुनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

२. आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान- डॉ. देवराज उपाध्याय- साहित्यभवन, इलाहाबाद १९९८

३. उपन्यास की संरचना – गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण २००६

४. उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन- बलराजसिंह राणा संजय प्रकाशन दिल्ली १९७८

५. जैनेन्द्र और उनका साहित्य- डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर- भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली

६. जैनेन्द्र के उपन्यासो में नारीपात्र- डॉ. सावित्री मठपाल- मंगल प्रकाशन, जयपुर

७. जैनेन्द्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ- डॉ. सुरेश गायकवाड, सा. रत्नाकर कानपुर

८. जैनेन्द्र के उपन्यासो की विवेचना- डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ- पूर्वोदय प्रकाशन-१९७६

९. जैनेन्द्र उपन्यास और कला- डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ- पंचशील प्रकाशन जयपुर १९७८

१०. जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म की तलाश- चंद्रकांत बांदिवडेकर- पूर्वोदय प्रकाशन-१९८४ दिल्ली

११. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास- डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव- लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद १९९३

१२. जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प- डॉ. ओम प्रकाश शर्मा- पाण्डु लिपि प्रकाशन १९६३

१३. हिन्दी उपन्यासो में सामाजिक चेतना- डॉ. लाल साहिब सिंह नमन प्रकाशन दिल्ली १९९८

१४. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन- डॉ. शांति भारद्वाज- सुशील प्रकाशन अजमेर १९६९

१५. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण- महेन्द्र चतुर्वेदी- नेशनल पब्लिशिंग हाऊस- १९६२ दिल्ली

१६. आलोचना अंक- १३, उपन्यास विशेषांक, मध्यमवर्गीय वस्तुतत्व का विकास- बच्चनसिंह

१७. धर्मयुग- जैनेन्द्र के उपन्यासो पर आलेख- सं. धर्मवीर भारती

१८. हिन्दी साहित्यकोश- भाग-२ भोलानाथ तिवारी

१९. जैनेन्द्र – सृजन और धर्म- डॉ. रामकमल राय

२०. मुक्तिबोध- जैनेन्द्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली १९६५

*****

४

मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण स्त्री पुरुष सम्बन्धों का रूप, द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति और विवाहेतर सम्बन्धों के विविध रूप

इकाई की रूपरेखा

४.१ उद्देश्य

४.२ प्रस्तावना

४.३ मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण

४.४ मुक्तिबोध उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का रूप

४.५ पीड़ा का भाव और द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति

४.६ मुक्तिबोध उपन्यास में विवाहेतर संबंधों के विविध रूप

४.७ सामाजिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष संबंध

४.८ लघुउत्तरीय प्रश्न

४.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.१० बोध प्रश्न

४.११ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

४.१२ सारांश

४.१ उद्देश्य

- मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों के चरित्र चित्रण को समझने में।
- स्त्री-पुरुष संबंधों के रूप को स्पष्ट रूप से समझने में।
- 'मुक्तिबोध' उपन्यास में अभिव्यक्त पीड़ा के भावों को समझने हेतु।
- 'मुक्तिबोध' उपन्यास में विवाहेतर संबंधों के बारे में समझने हेतु।
- सामाजिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष संबंधों को समझने में उपयोगी।

४.२ प्रस्तावना

कथाकार जैनेन्द्र जी द्वारा रचित उपन्यास 'मुक्तिबोध' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया एक लघु उपन्यास है। आत्मा विश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया जैनेन्द्र जी का यह पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक जैनेंद्र जी ने उपन्यास के नायक सहाय और उनके पारिवारिक सदस्यों की खूब चर्चा की है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजनीति के सक्रिय सांसद मिस्टर सहाय का राजनीतिक जीवन से मुक्ति के संघर्ष को विस्तृत रूप से दिखाने

का प्रयास जैनेन्द्र जैसे लोकप्रिय कथाकार ने किया है। समकालीन भावबोध से अनुप्रेरित 'मुक्तिबोध' जैसे उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद के लगभग पन्द्रह वर्षों में खींचातानी, आदर्श के प्रति उत्सर्ग की भावना, मंत्री पद हेतु स्वाभाविक महत्व के संघर्ष की अनुभूतियों का निरूपण भी इस उपन्यास में हुआ है।

भारत जैसे विस्तृत देश की केन्द्रीय शक्ति में एक समय विशिष्ट परिवर्तनों की आवश्यकता अनुभव की गई और परिणाम स्वरूप 'कामराज' योजना की शुरुआत हुई थी, जिसमें मंत्री पद से त्यागपत्र देने की स्थिति आवश्यक समझी गई थी। इस उपन्यास के नायक सहाय कामराज योजना के अन्तर्गत अपने आदर्शवाद तथा अहंवाद के कारण अपने मिले हुए पद को अस्वीकार कर देता है।

स्त्री-पुरुष संबंधों में व्यक्त संघर्षों में एक और बुद्धि का संघर्ष होता है तो दूसरी ओर भावना का बौद्धिक धरातल पर पात्र परिस्थितियों से टक्कर होता है। किन्तु भावना की प्रबलता इतनी तीव्र होती है कि भावना की विषय पर पीड़ा का अनुभव होने लगता है।

नीलिमा मि. दर की पत्नी होते हुए भी वह सहाय से प्रेम करती है। सामाजिक जीवन में अंत में दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है। पत्नियॉं अपने प्रेमियों को छोड़कर अपने गृहस्थ जीवन में लौट जाती है। मि. सहाय को मंत्री पद स्वीकृत करने के लिए मजबूर करती नीलिमा भी अपने गृहस्थ जीवन में लौट आती है। जैनेन्द्र के अनुसार आकर्षण पवित्र और सर्वव्यापी है। 'मुक्तिबोध' में राजश्री जैसी सुंदर, सुशील पत्नी, बेटी अंजलि, और बेटा वीरेश्वर, दोनों वयस्क होते हुए भी सामाजिक बंधनों को त्यागकर सहाय नीलिमा जैसी स्वच्छंद प्रवृत्तिवाली युवती के सौंदर्य रूपी आकर्षण में बंध जाते हैं। नीलिमा के दर्शन मात्र से ही उसमें स्फूर्ति का संचार होने लगता है। उसके आकर्षण में चुंबकीय वैशिष्ट्य है।

४.३ मुक्तिबोध उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण

मुक्तिबोध उपन्यास के प्रमुख पात्र सहाय के अलावा पत्नी राज्यश्री, नीलिमा, कुंवर, ठाकुर, विक्रम, वीरेश्वर आदि पात्र अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

१. सहाय:

मिस्टर सहाय इस उपन्यास में चौपन वर्ष की आयु का प्रौढ़ राज्य के मंत्री पद पर आरूढ़ लोकप्रिय नेता हैं। कर्मठ एवं इमानदार सहाय विचारों के द्वन्द्व में उलझा हुआ है। उसे ऐसा लगता है कि जिस परिवार के प्रति उसने अपना कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाया, वे सब के सब सिर्फ उसके मंत्री पद से ही अपना स्नेह रखते हैं। राजनीति में स्वार्थ भावना के फल स्वरुप कामराज योजना के अन्तर्गत वे अपने पद से मुक्त होना चाहते हैं। मिस्टर सहाय का दाम्पत्य जीवन भी सर्वदा द्वन्द्व युक्त रहा है। पत्नी राजश्री जो एक सुंदर, समझदार, एवं सुशील है, वह निष्ठापूर्वक अपने पत्नीत्व कर्म को निभाती है। किन्तु सहाय एक नीलिमा नामक पैंतीस वर्षीय युवती से प्रेम करते हैं, इसलिए कभी वे अपनी पत्नी को सच्चा प्रेम नहीं दे सके। केवल सामाजिक प्रतिष्ठा एवं एक पारिवार की सुख-सुविधा की दृष्टि से ही राजश्री का महत्व समझा जाता है। सहाय का पारिवारिक जीवन बहुत ही दुविधापूर्ण है, क्योंकि न तो वे सामाजिक बंधनों को तोड़कर पत्नी से ही मुँह मोड़ सकते हैं, और न तो वे अपनी

प्रेयसी नीलिमा के प्रति अपने प्रेम पूर्ण हृदय का ही गला घोट सकते हैं। मिस्टर सहाय अपनी पत्नी और प्रेमिका के बीच हिचकोले खाने वाला एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो सामाजिक मर्यादाओं को जानते हुए भी प्रेमिका के प्रति अनवरत ढलते रहने के कारण भी निरन्तर संघर्षरत रहता है। सहाय अपनी पत्नी राजश्री और ठाकुर महादेव सिंह के बीच पनप रहे प्रेम के कारण भी हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। फिर भी वह ठाकुर महादेव और पत्नी राजश्री के बीच कभी बाधा नहीं बनना चाहते हैं। डॉ. अन्नपूर्णा सिंह के अनुसार, 'सहाय का अहं अत्यन्त प्रबल है। हर वक्त सबके साथ व्यवहार में उसका अहम् उपस्थित हो जाता है। प्रेयसी नीलिमा के साथ प्रेमालाप, भ्रमण आदि प्रसंगों में उसका अहं उसे पूर्ण सुख नहीं लेने देता।

अपने अहंग्रस्त कमजोर व्यक्तित्व एवं अहंकार के कारण ही उसकी कर्मठता में भी कमी आ गई है। सिद्धान्तों के फल स्वरुप पुत्र वीरेश्वर के मामले में ठाकुर महादेव सिंह एवं उसके जामाता कुँअर साहब में विरोध लगातार बढ़ता जा रहा है, जिसका कोई हल या विकल्प सहाय के पास बिल्कुल भी नहीं है। सहाय चौवन वर्ष की अवस्था में भी शारीरिक आकर्षण ग्रस्त है, नीलिमा के भरे-पूरे शरीर को देखकर वह बेचैन हो उठता है, और यह सोचता है कि 'देह में भरती आती हुई नीला पहले से अच्छी लग रही है। जरा बाँह को दबाकर देखूँ, पूँछू कि नीलिमा तुम पर से उम्र क्या कपूर की तरह आकर उड़ जाती है? सिर्फ सुगंध छोड़ जाती है। सच में जिस्म तुम्हारा गदराया जा रहा है।

सहाय का मुक्तिबोध का भाव जीवन के प्रति आसक्ति को नहीं त्यागता, बल्कि वह कहीं न कहीं उनके अहं का ही द्वन्द्व है। इसीलिए नीलिमा के प्रयत्नों से वह द्वन्द्व मिट जाता है, और वे पुनः मंत्री जैसे पद को स्वीकार कर उस पर आसीन हो जाते हैं।

२) राजश्री:

मुक्तिबोध उपन्यास की नायिका राजश्री भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की आदर्श पत्नी के समान पति को ही सर्वस्व मानने वाली पूर्णत: निष्ठावान एवं समर्पिता नारी और एकनिष्ठ भाव वाली पत्नी है। सुख और दुख दोनों ही स्थिति में साथ निभाने वाली वह मिस्टर सहाय के आन्दोलन में भाग लेते समय घर की आर्थिक विपन्नता में भी और मंत्री पद पर भी हमेशा सहाय का ही साथ देने वाली है। राजेश्री ने अपने घर का संचालन पूरे ही मनोयोग से किया, क्योंकि पति सहाय की प्रसन्नता में उसकी अपनी भी प्रसन्नता भी छुपी हुई है। पतिधर्म और परिवार के प्रति कर्तव्य भावना से पूर्ण राजश्री बावन्न वर्ष की अवस्था में सहाय द्वारा मंत्री पद त्यागने की बात पर बेचैन हो जाती है, परन्तु वह यह भी जानती है कि मंत्री पद का अस्वीकार उनको अपनी व्यक्तिगत निवृत्ति का भाव नहीं हो सकता, क्योंकि वे बड़े ही महत्वाकांक्षी स्वभाव वाले व्यक्ति माने जाते हैं।

उपन्यास में राजश्री का पत्नीत्व इतना सशक्त नहीं है कि वह अपने पति सहाय का खुलकर या मुखर होकर विरोध कर सकें। इसलिए राजश्री सहाय की प्रेयसी नीलिमा को भी हृदय से स्वीकार करती है। नीलिमा के प्रति भी उसे पूर्ण विश्वास है कि वह सहाय को कभी नीचे नहीं गिरने देगी। राजश्री सहाय से कहती है, 'हाँ आदमी में देवता होता है, और पत्नी नहीं प्रेयसी उसे जगाती है। तुम अपने देवत्व से लड़ते क्यों हो? तुमको तृप्त और प्रसन्न आते देखूँ तो क्या इसमें मुझे प्रसन्नता नहीं होगी? राजश्री कुशल होने के साथ-साथ बड़ी ही

होशियार भी है, वह ठाकुर के राजनीतिक महत्व को जानकर उनसे बड़ा ही आत्मीय व्यवहार भी रखती है। नीलिमा का भेद वह ठाकुर से छुपाकर रखती है। ठाकुर की सहाय के प्रति नाराजगी बड़ी ही चतुराई से दूर कर विपक्ष के नेता भानुप्रताप के वहाँ आने के बाद भी उनसे छुपाती है। राजश्री के पति के प्रति समर्पिता वाला भाव होने के कारण ही सहाय के हृदय में प्रेम भाव जागृत होता है। राजश्री की पारिवारिक तपस्या का क्षेय भी नीलिमा को ही जाता है। वीरेश्वर को समझाने और सहाय को मिनिस्ट्री स्वीकार करने का कार्य भी नीलिमा के द्वारा ही पूर्ण होता है। राजश्री के चरित्र में मध्यवर्गीय व्यक्तित्व वाली नारी ही छुपी हुई है। जो अपने पति में श्रद्धा और परिवार की मंगलाकांक्षा में जीती है। राजश्री सहज, स्वाभाविक और एक बड़ी ही विश्वसनीय पत्नी के रूप में चित्रित की गई है।

३) नीलिमा:

'मुक्तिबोध' उपन्यास में जैनेन्द्र जी ने नीलिमा का स्वरूप पत्नीत्व और प्रेयसीत्व दोनों ही रूपों में दिखाने का प्रयास किया है। मुक्तिबोध में नीलिमा का पात्र एक नायिका के रूप में बड़ा ही निखरा-सँवरा हुआ प्रस्तुत किया गया है। नीलिमा सहाय की प्रेरणामूर्ति भी मानी जाती है, जिसे सहाय की पत्नी राजश्री भी स्वीकार करती है। नीलिमा मिस्टर दर की पत्नी होते हुए भी पति और प्रेमी दोनों को आच्छादित, प्रभावित करने की शक्ति उसमें विद्यमान है। नीलिमा अपने प्रेमी सहाय के मंत्रीपद को त्यागने की बात सुनकर उन्हें रोकना चाहती है। वह सहाय की महत्वाकांक्षाओं की याद दिलाते हुए कहती है, 'पुरानी बातें याद करो। तुम में सपने थे, और तुम्हारी नजर में से उन सपनों को मैं अपने सई देखने लगी थी।' आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है।'

नीलिमा एक आधुनिक नारी है, और आधुनिकता उसमें कूट-कूटकर भरी हुई है। झूठी मर्यादाओं पर उसे बिल्कुल ऐतराज है। सूरज कुंड में वेडिंग सूट में सूर्य स्नान करती देख सहाय उससे नाराज हो जाते हैं। सहाय की नाराजगी को वह कमजोरी समझ वह उसे कहती है, 'सूर्य स्नान में प्रकृति स्नान हो सकता था। मेरे शरीर के साथ मैं क्या सहज नहीं हो सकती थी। किसी का मन डोले तो डोले मुझे उससे क्या?' नीलिमा सहाय के प्रति अपने प्रेम को राजश्री से नहीं छुपाती। नीलिमा पर राजश्री को भी अटूट विश्वास है, इसलिए सहाय को नीलिमा से मिलने की छूट देती हुई वह कहती है कि- 'नीलिमा को मैं जानती हूँ। वह मामूली औरत नहीं है। अपने को गिरा नहीं सकती। इसलिए पुरुष को भी गिरा नहीं सकती। तुम उसके बारे में नि:शंक रह सकते हो।'

नीलिमा अपने पति पर पूरा प्रभाव जमाए सहाय की पारिवारिक समस्या को सुलझाकर तथा मंत्रीत्व पद से मुक्ति के भाव को भी परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार से नीलिमा का प्रेयसीत्व अत्याधिक सफल जान पड़ता है, क्योंकि इस प्रेयसीत्व का निर्वाह करते हुए न तो उसका पत्नीत्व सफल होता है, और न तो उसका नारीत्व ही नीलिमा को चोट पहुँचाता है।

४) कुँअर:

मिस्टर सहाय का जामाता कुँअर एक सफल उद्योगपति, धन के वैभव में लिप्त पाश्चात्य विचारधारा को मानने वाला व्यक्ति है। वाक्चातुर्य में निपुण कुँअर विवाहित होते हुए भी अन्य कई स्त्रियों से संपर्क रखता है। अपनी पत्नी अंजलि में वह धन के प्रति आकर्षण पैदा

करने में बड़ी ही कुशलता के साथ काफी हद तक सफल भी हो जाता है। सहाय के जामाता कुँअर का लक्ष्य सिर्फ और सिर्फ धन प्राप्ति ही है। मंत्री पद पर आरूढ़ मिस्टर सहाय उसके श्वसुर है। वह इस अवसर से अपने वाक्चातुर्य के बल पर ही उनसे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहता है। उसका साला वीरेश्वर किसी अन्य राजनीतिक नेता का आश्रय लेता है, तब वह अपनत्व का भाव प्रकट कर उन्हें वापस बुलाने जाता है।

५) ठाकुर:

इस उपन्यास के एक और प्रमुख पात्र ठाकुर महादेव सिंह की गॉव में बहुत बड़ी जमींदारी है। सहाय के परिवार से भी महादेव ठाकुर की बड़ी ही घनिष्ठता है। सहाय का पुत्र वीरेश्वर उसके फार्म पर रहता है। वह इलाके का बड़ा ही प्रभावशाली व्यक्ति होने के कारण राजनीति में भी उसकी गहरी रुचि है। सहाय जी की मंत्री पद की उदासीनता से वह बहुत गहरे रूप से चिन्तित है। ठाकुर महादेव सिंह व्यवहार कुशल एवं विनोदी स्वभाव का व्यक्ति है। सहाय के पुत्र वीरेश्वर को सहाय का जामाता व्यवसाय में लगाना चाहते है। महादेव सिंह के फार्म पर रहता वीरेश्वर कहां रहे? इस प्रश्न पर कुँअर और महादेव सिंह में विवाद हो जाता है। कुँअर भी धन के अहंकार के मद में कटु हो जाता है, जिससे अपमानित ठाकुर सहाय को कुँअर की दृष्टता के विषय में कहता है- ‘सुनो सहाय, कुँअर बड़े होंगे तो अपने घर के होंगे। मुझे घर पर दोस्त जमाते हो, तो किस बात की।
महादेव सिंह ठाकुर स्पष्टवादी होने से राजनीति में सफल नहीं होता है।

६) वीरेश्वर:

मुक्तिबोध उपन्यास में वीरेश्वर सहाय का पढ़ा-लिखा पुत्र है, शिक्षित होने के बावजूद अपने पिता सहाय के मंत्री पद पर रहते, कोई लाभ न उठा पाने के कारण वह अपनी प्रतिक्रिया के रूप में पिता के आदर्शों एवं आचरण से कुपित है, और अपने पिता सहाय से दूर जाकर ठाकुर महादेव सिंह के फार्म पर रहता है। वीरेश्वर अपने पिता के प्रति विद्रोह की भावना के फलस्वरूप उसका बहनोई कुँअर उसमें धन प्राप्ति की अपार लालसा उसके भीतर जागृत करता है, पिता का सालस स्वभाव वीरेश्वर को बिल्कुल भी रुचिकर नहीं लगता है, वह चाहता है कि उसके पिता सहाय उसे कभी-कभी डांटे-डपटें। मिस्टर सहाय मंत्री जैसे बड़े पद को अस्वीकार कर देते हैं, उससे जन समूह अटकलों पर उत्तर देते समय सहाय कहते हैं कि उन्हें आत्मिक शांति चाहिए। वे ‘मुक्ति के बोध’ का अहसास करने के लिए ही पद की अस्वीकृति चाहते हैं। वीरेश्वर अपने पिता के इस तरह के व्यवहार का विश्लेषण कुछ इन शब्दों में करता है, ‘लेकिन उनका यह ढ़ोंग है कि पद नहीं चाहिए। पद के लिए तो सारा त्याग, तपस्या का यह रूप है, ऊपरी जो है वह नखरा है, इसलिए है कि आग्रह अनुरोध हो और वे यह जाहिर कर सके कि पद ने नहीं बल्कि इन्होंने पद पर स्वयं कृपा की है।

७) विक्रम:

विक्रम सिंह ‘मुक्तिबोध’ उपन्यास में मिस्टर सहाय का एक राजनीतिक विरोधी है। विक्रम सिंह जैसे प्रभावशाली व्यक्ति कहीं पार्लियामेंट में न चले जाएँ, इसलिए मिस्टर सहाय के सभी हितेषी उन्हें मंत्री पद से त्यागपत्र देने के लिए बहुत समझाते रहते हैं। विक्रम सिंह का

नाम मात्र लेने से ही ठाकुर महादेव सिंह जी विफल हो जाते हैं। विक्रम सिंह और महादेव सिंह के आगमन से मिस्टर सहाय की प्रतिक्रियाएँ खुलकर सामने आने लगती हैं।

४.४ मुक्तिबोध उपन्यास में स्त्री पुरुष संबंधों का रूप

सहज आकर्षण: कथाकार जैनेन्द्र जी के अनुसार आकर्षण पवित्र और सर्वव्यापी होता है। 'मुक्तिबोध' में राजश्री जैसी सुंदर और सुशील पत्नी, बेटी अंजली और बेटा वीरेश्वर, दोनों वयस्क होते हुए भी सामाजिक बंधनों को त्यागकर सहाय और नीलिमा जैसी स्वच्छंद प्रकृति वाली युवती के सौन्दर्य रूपी आकर्षण में बंध जाते हैं। नीलिमा के दर्शन मात्र से ही उसमें स्फूर्ति का संचार होने लगता है। उसके आकर्षण में कहीं न कहीं चुम्बकीय आकर्षण भी विद्यमान है।

४.५ पीड़ा का भाव और द्वन्द्वात्मक अभिव्यक्ति

जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशिष्टता यह है कि उनमें द्वन्द्व सिर्फ नारियों में ही दिखाई देता है, क्योंकि वह पत्नी और प्रेमिका दोनों ही रूपों में इस 'मुक्तिबोध' उपन्यास में मौजूद है। 'मुक्तिबोध' में एक असफल प्रेम की पीड़ा से सहाय अपना मंत्री पद छोड़ना चाहता है, तब वह विवाहित होने के बावजूद अपने प्रेयसी धर्म का निर्वाह करने के लिए निलीमा सहाय को समझाने के लिए जाती है। उससे कहती है- 'मालूम नहीं लगा कि तुम मूड़ रहे हो, मुझसे नहीं, सबसे ही मुड़ रहे हो। जिधर दुनिया है, उससे उल्टी तरफ जाना चाहते हो। डर तो पहले भी था मुझे तुम्हारे बारे में, लेकिन इस बार क्या बात है कॉटा क्या है?

राजश्री अपने पति सहाय की पीड़ा को भली भांति समझती है, इसलिए वह अपना कर्तव्य त्याग कर भी उसे नीलिमा के पास मिलने हेतु भेजती है।

पति के प्रति विद्रोह भाव:

मुक्तिबोध उपन्यास में स्त्री के सामने प्रेमी के रूप में तथा एक प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में कोई पुरूष यदि आता है तो उस स्त्री का अपने पति के प्रति विद्रोह भाव भी झलक उठता है। सूरज कुंड में वेडिंग सूट में सूर्य स्नान करना उसके पति के प्रति असंतोष या विद्रोह भाव को प्रकट करता है। इसी तरह से राजश्री का अपने पति से असंतोष उसे ठाकुर की और खींचकर ले जाता है। इस उपन्यास में लेखक जैनेन्द्र कुमार ने प्रेम की अनिवार्यता को भी आवश्यक माना है। उनका मानना है कि जीवन प्रेम करने के लिए ही बना है, यदि प्रेम न हो तो इस जीवन का कोई भी मतलब नहीं है। 'मुक्तिबोध' जैसे लोकप्रिय उपन्यास में चौवन्न वर्षीय मिस्टर सहाय को भी अपनी प्रेयसी नीलिमा के प्यार की प्यास बनी हुई है। और सहाय की यह प्यास कहीं ना कहीं राजश्री को भी स्वीकार है। वह यह मानती भी है आदमी में देवता होता है और पत्नी नहीं हमेशा एक प्रियसी ही उसे जगाती है। डॉक्टर वांदीवाडेकर के अनुसार नीलिमा तो वह प्रेयसी है, और जो पति को पत्नी में नहीं मिला, वह सहाय को नीलिमा में मिला, रस, सौन्दर्य, समान स्तर पर स्थित उत्कट बंधन रहित प्रेम। 'मुक्तिबोध' जैसे उपन्यास में दाम्पत्य संबंधो का चित्रण भी बड़े ही खुले रूप से हुआ है। यथा समझौतावादी दाम्पत्य इस संबंध में पति-पत्नी के बीच ऊपरी तौर से भी अन्य स्त्री या पुरूष के कारण संबंधों में थोड़ा सा भी अलगाव आ जाये किन्तु जीवन में एक समय तो ऐसा

भी आ जाता है कि पत्नी का महत्व खुद-ब-खुद स्थापित हो जाता है। मिस्टर सहाय इस उपन्यास में जीवन भर नीलिमा से ही प्रेम करते रहे, किंन्तु चौपन्न वर्ष की अवस्था में उन्हें पत्नी का महत्व और उसकी उपयोगिता उन्हें समझ में आने लगती है। सचमुच अगर देखा जाए तो इधर पत्नीत्व की संस्था में इसका अर्थ प्रतीत होने लगा है। पत्नी बच्चों की मॉं हो सकती है, पर उमर हो जाने पर उसकी गहरी वत्सलता उसके पति को ही प्राप्त होती है। अर्थात् विवाह जैसी पद्धति का सार वय की नवीनता में नहीं मिलता है, बल्कि अधिकता में ही हासिल होता है। सामाजिक जीवन में एक पत्नी के रूप में प्रतिष्ठा राजश्री को ही मिलती है, भले ही सहाय प्रेरणा मूर्ति नीलिमा बनी रही है। आने वाले हर व्यक्ति से भाभी का सम्मान और प्रतिष्ठा की असली हकदार तो राजश्री ही है। सहाय और राजश्री के दाम्पत्य जीवन में नीलिमा जैसी नारी प्रेम पर अपना एकाधिकार रखना चाहती है, किन्तु राजश्री को भी उससे किसी भी तरह की कोई शिकायत नहीं है। वह पारिवारिक जिम्मेदारियों और दुखों को ढोकर, नीलिमा को ही सहाय की प्रेरणा मानकर उन्हें सुलझाने का पूरा अवसर देती है। वास्तव में सामाजिक मर्यादाओं के कारण सहाय जैसा राजनितिक व्यक्ति न तो नीलिमा के कारण राजश्री का ही हो पाता है, और न ही राजश्री के कारण नीलिमा का। राजश्री के एक समझदार एवं कुशल पत्नी होने से सहाय के इस दोहरे जीवन की गृहस्थी भी राजश्री बड़े ही सुचारु रूप से चलाती है।

४.६ मुक्तिबोध उपन्यास में विवाहेतर संबंधों के विविध रूप

विवाहेतर प्रेम संबंधों को बाँधे रखने में जैनेन्द्र का आध्यात्मिक भाव भी कारण रूप में विद्यमान है। जो कुछ भी विवाह में प्राप्त नहीं होता वह अलौकिक आनंद में ही प्राप्त हो जाता है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में राजश्री एवं नीलिमा के प्रेमिका रूप की शक्ति को भली भाँति जानती है। पति के सोए हुए ईश्वरीय भाव को वह प्रेयसी द्वारा ही जगाना चाहती है। सहाय मंत्री पद से त्यागपत्र देना चाहते हैं, और सहाय में कर्म के प्रति आस्था जगाने का सबसे बड़ा कारण नीलिमा ही बनती है। संघर्षमय जीवन की अभिव्यक्ति से भी निर्मित संबंधों को इस उपन्यास के माध्यम से दर्शाया गया है। स्त्री-पुरुष संबंधो में व्यक्त संघर्षो में एक तरफ जहाँ बुद्धि का संघर्ष होता है तो दूसरी ओर भावना का बौद्धिक धरातत्व पर पात्र कहिं न कहिं परिस्थितियों से टक्कर लेता हुआ भी नजर आता है। किन्तु भावना की प्रबलता इतनी तीव्र होती है कि भावना की विजय पर ही पीड़ा का अनुभव भी होने लगता है। नीलिमा 'मुक्तिबोध' उपन्यास में मि. दर की पत्नी होते हुआ भी वह मिस्टर सहाय जैसे व्यक्ति से ही प्रेम करती है। सामाजिक जीवन के अंत में सब दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है। पत्नियाँ अपने प्रेमियों को छोड़कर अपने गृहस्थ जीवन में ही वापस लौट जाती हैं। मिस्टर सहाय को मंत्री पद स्वीकार करने के लिए मजबूर करती रहने वाली नीलिमा भी अपने गृहस्थ जीवन में वापस लौट आती है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधो का विश्लेषण भी बड़ी ही बारीकी के साथ किया गया है। जैविकीय दृष्टि से भी इस उपन्यास में स्त्री-पुरूष संबंधों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

'मुक्तिबोध' उपन्यास में पति-पत्नी के आत्मिक संबंधों की अपेक्षा प्रेमी-प्रेमीका के संबंधों को ही अधिक गहरा माना गया है। राजश्री मिस्टर सहाय की पत्नी होते हुए भी नीलिमा के प्रेयसी रूप को सहर्ष स्वीकार करती है, जब-जब वह अपने पति मिस्टर सहाय को उद्विग्न देखती है तो उसे वह तब-तब नीलिमा के पास ही भेजने की पूरी कोशिश करती है। मिस्टर

सहाय को भी जब जीवन में रिक्तता महसूस होने लगती है, अपनों से अपनत्व टूटता दिखाई देता है, बावन वर्ष की उम्र में जब सहाय अकेलापन महसूस करने लगते है तो वे अपनी पत्नी राजश्री को ही समझाने लगते है। यदि जीवन में से प्यार चला गया तो फिर हमारे पास क्या रह जाएगा, प्यार के बिना तो सारा जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ता है। इस उम्र में हम केवल माया और ममता में ही पड़े रहेंगे तो हमारी क्या गति होगी। पुरुष के जीवन में पत्नी सामाजिक जीवन की पूर्णता तथा प्रेयसी आत्मिक संबंधों की तृप्ति का माध्यम है। इसीलिए प्रेयसी नीलिमा से जो आत्मीय स्फूर्ति सहाय को मिलती है, वह राजश्री से नहीं मिल पाती है, और सहाय के मित्र ठाकुर को मित्र सहाय की पत्नी राजश्री भाभी ही अधिक निकट महसूस होती है। अपनी प्रेमिका के संबंधों में खोए सहाय नीलिमा से कहते हैं, की नीलिमा तुम्हारे संपर्क में मैं न तो अपने ऊपर आवरण ले सकता हूँ, न धर्म या सिद्धान्त का आदर्श ही ले सकता हूँ। अच्छा, बुरा, स्वार्थ, नि:स्वार्थ जो भी होगा सब ठीक ही होगा, और यही हम दोनों को भी स्वीकार्य होना चाहिए एक ऐसा कृतित्व जिसमें हम दोनों नहीं, बस एक ऐसी अनिवार्यता हो जिसमे या मैं रहूँ या तुम। डॉ. चंद्रकांत वांदिवडेकर के विचारों से यह स्पष्ट कहा जा सकता है की, नीलिमा तो प्रेयसी ही है और जो पति को पत्नी से नहीं मिला वह सहाय को नीलिमा में प्राप्त हो गया। रस, सौन्दर्य, समान स्तर पर स्थित उत्कट बंधन रहित प्रेम। यहाँ भी उन दोनों के संबंधों का आधार काम, वासना और शरीर मात्र ही नहीं है। वह है परन्तु उतना ही जिससे स्त्री-पुरुष के संबंध मांसल और रसवान बनते है। अधिकतर दोनों में वह उच्च मानसिक या आत्मिक संबंध है जो शरीर के माध्यम से ही सही परन्तु ऊपर चढ़कर विलक्षण चैतन्य प्रदान करनेवाले हो जाते है, और जिन्हें स्थूल प्रचलित आसान शब्दों से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, काम प्रेम बन जाता है।

४.७ सामाजिक दृष्टी से स्त्री-पुरुष संबंध

सामाजिक जीवन में परिवार के प्रत्येक व्यक्ति पर परिवार का पूरा अधिकार होता है। व्यक्ति के प्रत्येक फैसलों पर पारिवारिक अनुमति यदि न हो तो विरोध की संभावनाएँ हो उठती है। मिस्टर सहाय इस उपन्यास में मंत्री पद पर प्रतिष्ठित है, समाज में उसका स्थान ऊँचा है पर अपने सिद्धांतो और आचरण पर कायम रहे तो परिवार वालों के लिए मुश्किल खड़ी होती है। मिस्टर सहाय को भी परिवार वालों ने अपने स्वार्थवश ही घेर रखा है। यदि सहाय अपने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दें तो दामाद को इंडस्ट्रीज का क्या होगा, इसलिए वीरेश्वर को इंडस्ट्रीज में रखने का प्रस्ताव रखा जाता है। सहाय को बेटी अंजलि भी यह शिकायत करती है कि आपके इस मंत्री पद से हमे क्या लाभ? हमारे लिए तो सारी की सारी उमर पड़ी है।

सिद्धांतो पर कायम रहने वाले सहाय जी से वीरेश्वर को भी शिकायत है। वह नीलिमा से कहता है, आप मेरा कष्ट नहीं समझोगी आंटी, इनका नाम है, और मै इनका बेटा समझा जाता हूँ, और बाहर सब लोग इनमे नाम के हिसाब से मुझे नापते है, और मै छोटा बन जाता हूँ, और लौटकर अपनी ही भीड़ में आ जाता हूँ। स्त्री पुरुष संबंधो के अन्तर्गत जैनेन्द्र कुमार की दृष्टी से परिवार में पुरुष के जीवन में प्रेयसी का स्थान ही अधिक महत्वपूर्ण है, भले ही वह सामाजिक दृष्टी से न हो। नीलिमा सहाय को प्रेयसी के रूप में होते हुए भी परिवारिक समस्याओं के लिए मजबूर करता है। 'मुक्तिबोध' शीर्षक उपन्यास में राजनीति से मुक्ति पाने की कश्मकश मिस्टर सहाय में बनी हुई है। सहाय एक मंत्री होने के कारण उनसे उनके

परिवार वाले सगे-संबंधी, मित्र सभी स्वार्थवश कुछ न कुछ लाभ उठाना चाहते है, उनकी दृष्टी में महत्व सहाय का नहीं, उनके मंत्रित्व का है। इसी कुंठा के कारण सहाय मंत्री-पद त्यागपत्र देना चाहते हैं। मिस्टर सहाय मंत्री पद त्यागने के अलावा पत्नी तथा प्रेमिका के बिच उलझे हुए द्वंद्व ग्रस्त नजर आते है। पत्नी के प्रति कभी पूर्णता का अनुभव इसलिए नहीं जगता कि नीलिमा का प्रेम उन्हें चारो ओर से घेरे हुए है। किन्तु नीलिमा के साथ सूरजकुन्ड में वेड़िंग सूट में सहाय उसे कतई बर्दाश्त नहीं कर पाते है, वहाँ उनके समक्ष अपने विवाहित होने की मर्यादा सामने आ जाती है।

सहाय नीलिमा की इस तरह की हरकतों की वजह से ही उसे अपमानित भी करते हैं, नीलिमा भी मिस्टर सहाय के मन की कुंठा को जान, समझ लेती है, और यह कहती भी है कि, ‘मरीज और इलाज सब शरीर में ही होते है। बंद में मरीज खुले में इलाज इसी तरह से 'मुक्तिबोध' उपन्यास स्त्री-पुरुष के बीच शारीरिक संबंधो का प्रश्न तब उठता है, जब वो नीलिमा सहाय की पत्नी राजश्री से कहती है, सच बताऊँ राज भाभी तुमने अब तक इनमें स्त्री के शरीर का डर क्यों रहने दिया है। डरते खुद है, माफ़ी मुझसे माँगते है। सहाय का भरा-पूरा परिवार है, काफी लम्बा वैवाहिक जीवन भी है, फिर भी प्रौढ़ावस्था में शारीरिक आकर्षण का रोमांस का ज्वार बढ़ जाता है, भले ही उसमें वासना की गंध न हो। मिस्टर सहाय के लिए राजश्री का मूल्य घर के सामान जितना ही है, पर ठाकुर के साथ पत्नी के लगाव को देखकर एक नया आकर्षण पैदा होता है। उसकी नजर में वह पड़ोसी हो गयी है। बिस्तर पर जाते समय उसकी मुस्कान एवं चाल से पिघलकर सहाय बिलकुल मोम बन जाते हैं।

प्रेमी-प्रेमिका कभी शारीरिक संबंधों में मर्यादाओं का उल्लंघन भी कर बैठते हैं। सहाय की प्रेमिका नीलिमा एक बार की घटना की याद दिलाती हुई कहती है कि एक बार हम दोनों भूले थे, वह क्षण क्या मर सकता है। इसीलिए खुद को या अपने फर्ज को बहुत ज्यादा याद रखने की जरुरत भी नहीं है। एक बार जो उनसे भूल हुए थी उसके परिणाम स्वरुप मिस्टर सहाय बार-बार नीलिमा के प्रति खींचे चले आते हैं। परन्तु वे मर्यादाओ में भी बंधे रहते है। अपने पत्नी राजश्री के होते हुए भी नीलिमा के प्रति शारीरिक आकर्षण उनकी शारीरिक अतृप्ति को व्यक्त करता है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास में विवाहित सहाय और उसकी प्रेरणा मूर्ति प्रेयसी के संबंधों को स्त्री-पुरुष संबंधों के मध्य नैतिक मान्यता भी प्राप्त हुई है। इस बात को सहाय जी की पत्नी राजश्री भी सहर्ष स्वीकार करती है। वह मिस्टर सहाय को कई बार अचेतन या अशांत देखकर कहती भी है की अब तो नीलिमा आ गई है, बिगड़े हुए क्यों हो, खुश रहने की बात है। विवाह के माध्यम से प्रेम करने का अधिकार पति को सिर्फ पत्नी से होता है, इसलिए जैनेन्द्र सहाय और उनकी पत्नी, प्रेयसी दोनों को ही देखते हैं। कभी-कभी पत्नी के आगे ऐसे प्रेम के कारण कमजोर ही होना पड़ता है।

इसीलिए सहाय की पत्नी राजश्री से कहती है, पति प्रेम में कायर हो जाया करते हैं, और अपनी पत्नी से ही चोरी करने लगते हैं। तुम को कभी उसकी जरुरत ही नहीं है राजश्री। डॉ. ज्योतिष जोशी इस नैतिक मान्यता के विषय में लिखते है, 'नीलिमा पराई स्त्री होकर भी सहाय को जीवन क्षेत्र के संघर्ष में पुनः लाती हैं, पर रोचक बात यह है की नीलिमा से सहाय के संबंध में सहाय की पत्नी राजश्री की भूमिका महत्वपूर्ण है। वह अपने पति की स्थिति समझती है तथा नीलिमा को भी अपनी तरफ से निश्चिंत करती है। पति-पत्नी संबंधों में

जीवन में इस गैर नारी का प्रवेश प्रतिक नहीं लगता, पर जैनेन्द्र जी ने नीरस जीवन स्थितियों में एक नारी के प्रवेश से नई जीवन ऊर्जा प्रवाहित की है।

४.८ सारांश

'मुक्तिबोध' उपन्यास में यह दर्शाया गया है की दाम्पत्य संबंधों में पति-पत्नी के स्वभाव में सरलता का और विनम्रता का होना बहुत जरुरी है। अलग-अलग प्रकृतियों वाले पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में हमेशा संघर्ष ही बना रहता है। दाम्पत्य संबंध वास्तव में बहुत ही मजबूत होते है। 'मुक्तिबोध' उपन्यास विवाहित सहाय और उसकी प्रेरणा मूर्ति प्रेयसी के संबंधों को स्त्री-पुरुष संबंधों में नैतिक मान्यता भी दिखाई देती है। इस उपन्यास में सहाय का भरा-पूरा परिवार है, लम्बा वैवाहिक जीवन भी है, फिर भी प्रौढ़ावस्था में शारीरिक आकर्षण का, रोमांस का, ज्वार बढ़ जाता है, भले ही उसमे वासना का लेश मात्र भी न हो। इस उपन्यास में शारीरिक संबंधों को भी मान्यता दी है।

४.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१) 'मुक्तिबोध' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए।

२) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में आए स्त्री-पुरुष संबंधों को विश्लेषित कीजिए।

३) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में पीड़ा के भावों की अभिव्यक्ति को स्पष्ट कीजिए।

४) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में विवाहेतर संबंधों पर प्रकाश डालिए।

४.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मिस्टर सहाय पर टिप्पणी लिखिए।

२) सामाजिक दृष्टी से स्त्री-पुरुष संबंध को समझाइए।

३) 'मुक्तिबोध' उपन्यास में द्वंद्वात्मक अभिव्यक्ति को स्पष्ट कीजिए।

४) नीलिमा पर टिप्पणी लिखिए।

४.११ बोधप्रश्न

१) 'मुक्तिबोध' उपन्यास के लेखक कौन हैं ?

२) 'मुक्तिबोध' उपन्यास को कौन सा पुरस्कार मिला है ?

३) नीलिमा किसकी प्रेयसी है ?

४) 'मुक्तिबोध' उपन्यास का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

४.१२ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तके

१) हिंदी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९६२ दिल्ली

२) धर्मयुग - जैनेन्द्र के उपन्यासों पर आलेख - सं. धर्मवीर भारती

३) जैनेन्द्र - सृजन और धर्म - डॉ. रामकमल राय

४) जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प - डॉ. ओमप्रकाश शर्मा - पांडुलिपि प्रकाशन - १९६३

५) जैनेन्द्र के उपन्यास मर्म की तलाश - चंद्रकांत वांदिवडेकर - पूर्वोदय प्रकाशन - १९८४ दिल्ली

*****

५

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
कहानी - रूकिया बुढीया और दो सहेलियाँ

इकाई की रूपरेखा

५.१ इकाई का उद्देश्य

५.२ प्रस्तावना

५.३ रूकिया बुढ़िया मूल संवेदना

 ५.३.१ रूकिया बुढ़िया : सामाजिक नियमों से विचलन की दुर्दशा

५.४ दो सहेलियाँ मूल संवेदना

 ५.४.१ दो सहेलियाँ : परम्परा और रूढ़ियों के बदलाव का संकेत

५.५ सारांश

५.६ वैकल्पिक प्रश्न

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

५.८ बोध प्रश्न

५.९ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

५.१ इकाई का उद्देश्य

जैनेंद्र हिंदी के अत्यंत महत्वपूर्ण कथाकार हैं, जिन्होंने कथ्य और संवेदना की दृष्टि से सर्वथा नवीन कहानियों के साथ प्रेमचंद के समय में ही लेखन के क्षेत्र में प्रवेश किया था। उनकी कहानियों की संवेदना और शिल्प के कारण तत्कालीन समीक्षकों ने उन्हें न केवल लक्षित किया बल्कि प्रशंसा भी पायी। साहित्य जगत को थोड़ा आंदोलित भी किया। आगे चलकर मनोवैज्ञानिक साहित्य की महत्वपूर्ण धारा को विकसित करने में उनका अत्यंत महत्वपूर्ण और युगांतरकारी योगदान माना गया। इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियों का अध्ययन किया जाएगा। पाठ्यक्रम में सम्मिलित कुल दस कहानियों में से 'रुकिया बुढ़िया' और 'दो सहेलियाँ' कहानियाँ इस इकाई के अंतर्गत सम्मिलित हैं। यह दोनों ही कहानियां जैनेंद्र की प्रतिनिधि कहानियों में सम्मिलित की जाती हैं। इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की विशिष्ट संवेदना और कथाशिल्प को विश्लेषित किया जाएगा, जिससे जैनेंद्र की समेकित विशेषताओं को देख पाना संभव हो सकेगा। इन कहानियों के अध्ययन से छात्र-छात्राएँ स्वयं किसी कहानी की समीक्षा के कार्य को समझने और करने में समर्थ हो सकेंगे।

५.२ प्रस्तावना

हिंदी कहानी का जन्म सन १९०० से माना जाता है और उस दौर में हिंदी कहानी के विकास में 'सरस्वती' और 'इंदु' जैसी पत्रिकाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान था। हिंदी कहानी का पहला दशक उसकी शैशवावस्था का समय था। दूसरे दशक के मध्य में चंद्रधर

शर्मा 'गुलेरी', मुंशी प्रेमचंद जैसे कहानीकारों के चलते कहानी में गंभीरता और शिल्प की दृष्टि से नवीनता आने लगी। डावाँडोल कदमों के साथ बढ़ रही हिंदी कहानी अचानक दौड़ लगाने में समर्थ हो गयी। हिंदी कहानी के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना की तरह माना जाता है। उन्होंने अपनी कहानियों में देश और समाज को केंद्र में रखा और यही उस समय की आवश्यकता भी थी। उनकी कहानियों में ग्रामीण समाज अपनी समस्याओं के साथ सचित्र रूप में सामने आया उन्होंने पूर्ण निभ्रांत दृष्टि से समाज का अवलोकन और मूल्यांकन किया। अकुंठ भाव से उस सत्य को अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के सामने रख दिया। समूचा उत्तर भारत अपनी संपूर्ण संवेदना के साथ उनकी कहानियों में धड़कता दिखाई देता है।

हिंदी कहानी के विकास के तीसरे दशक के अंत में कथाकार जैनेंद्र का आगमन हुआ और हिंदी को एक नए संवेदना-बोध से परिचित कराने का काम उन्होंने किया। उनकी कहानियों में व्यक्ति का मानसिक जगत खुलकर सामने आया। व्यक्ति का अपना मानसिक द्वंद्व और संघर्ष कहानियों में चित्रित हुआ। कहानियां व्यक्ति केंद्रित बनने लगीं। यहां व्यक्ति केंद्रित कहे जाने का अर्थ कदापि समाज निरपेक्ष नहीं है। व्यक्ति, समाज से अलग नहीं है, समाज की ही एक इकाई है और अंततः व्यक्ति का जगत, समेकित रूप में सामाजिक जगत का ही निर्माण करता है। इस तथ्य के मद्देनजर जैनेंद्र की कहानियां भले ही व्यक्ति-मनस को केंद्र में रखती हैं परंतु समाज निरपेक्ष नहीं है। यह अवश्य है कि उन्होंने कहानी की दिशा को एक और मोड़ दिया जो व्यक्ति और समाज दोनों की ही दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था।

सामाजिक जीवन जीते हुए व्यक्ति कई तरह के सामाजिक दबावों और तनावों से होकर गुजरता है। सकारात्मक स्थिति में तो व्यक्ति का अपना विकास होता है, परंतु सामाजिक संस्थाओं और व्यक्ति के बीच नकारात्मकता आ जाने के कारण व्यक्ति के मनोजगत में तमाम ग्रंथियां विकसित हो जाती हैं, जिनके कारण व्यक्ति का जीवन असहज और अस्वाभाविक हो जाता है। यह भी एक बेहद महत्वपूर्ण प्रश्न है कि सामाजिक संस्थाओं के इन्हीं प्रभावों और दुष्प्रभावों की चर्चा - परिचर्चा आवश्यक हो जाती है। इन ग्रंथियों का खुलना और खुलकर उन पर चर्चा होना भी आवश्यक हो जाता है। 'दो सहेलियां' जैसी कहानी लिखकर उन्होंने स्त्री जगत की जिन विडंबनाओं को उजागर किया, वह कभी गर्हित विषयों में सम्मिलित था। परंतु यह इसी समाज की कटु सच्चाई है। ऐसी न जाने कितनी विडंबनाएँ, मानसिक द्वंद्व तथा संघर्ष उनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं। इसीलिए गोविंद मिश्र कहते हैं, "जैनेंद्र कुमार हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के बाद के सबसे बड़े कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें प्रेमचंद के समानांतर भी खड़ा किया जाता है - कि अगर प्रेमचंद ने हिंदी कहानी उपन्यास को कल्पना और मनोरंजन लोक से निकालकर यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया तो जैनेंद्र ने उन्हें मनुष्य की भीतरी दुनिया में ले जाकर प्रौढ़ता प्रदान की।" इस तरह जैनेंद्र ने व्यक्ति मनोजगत के तमाम गर्हित प्रश्नों को अपनी कहानियों के माध्यम से उठाया और उस पर अत्यंत गंभीर विचार-विमर्श भी प्रस्तुत किया। भले ही वे किसी समाधान तक नहीं पहुंचते या अपनी तरफ से कोई समाधान नहीं देना चाहते, पर एक गंभीर चर्चा और विचारणीय बिंदु उनकी कहानियों का अंग हमेशा रहते हैं।

५.३ रुकिया बुढ़िया : मूल संवेदना

रुकिया बुढ़िया जैनेंद्र की अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी मानी जाती है। यह कहानी रुक्मिणी नामक एक लड़की के परिस्थितियों वश रुकिया के रूप में परिवर्तन की कहानी है। इस परिवर्तन से गुजरते हुए रुक्मिणी के अपने जीवन के सही-गलत फैसले और समाज से परे हटकर जाने का द्वंद्व, संघर्ष और परिणाम दिखाया गया है। जैनेंद्र पात्रों की मनोदशा के साथ डूबने-उतराने वाले कहानीकार हैं। इस कहानी में भी रुकिया की मनोदशा का सहज और स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है। अपने जीवन के गलत फैसलों के चलते और दीना के द्वारा किए गए विश्वासघात के कारण वह ऐसी अप्रतिरोध्य मुद्रा में दिखती है, जिससे पश्चाताप और प्रायश्चित - दोनों की छवि दिखाई देती है। एक कहानीकार के रूप में जैनेंद्र अपना काम कुछ इस तरह से करते हैं कि वे जीवन की विविध विडंबनाओं को लक्षित कर, उन्हें कथात्मक सांचे में ढालकर और पात्रों के मानसिक घात-प्रतिघात के द्वारा वे समस्त परिस्थितियों का उद्घाटन करते हैं। कर्ता होते हुए भी वे अपनी भूमिका को यहीं तक सीमित रखते हैं। जीवन की इन विविध विसंगतियों और विडंबनाओ तथा इनमें फंसे हुए पात्रों के प्रति वे किसी भी तरह के निर्णय को आरोपित नहीं करते हैं। उनका मुख्य काम है, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में फंसे हुए पात्रों को चित्रित कर देना और मूल्यांकन वे पाठकों पर छोड़ देते हैं। यह कहानी भी कुछ इसी तरह घटित होती है, जिसमें वे रुक्मिणी से रुकिया तक के सफर को समस्त घातों-प्रतिघातों के साथ चित्रित करते हैं, परंतु किसी भी प्रकार के निर्णय का उद्घाटन वे नहीं करते। इसे वे पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। आगे कहानी का विश्लेषण करते हुए इन सभी स्थितियों पर विचार-विमर्श किया जाएगा।

५.३.१ रुकिया बुढ़िया : सामाजिक नियमों से विचलन की दुर्दशा:

जैनेंद्र हिंदी के ऐसे अनूठे कहानीकार हैं जिन्होंने अपने समय में शब्द और शिल्प की दृष्टि से हिंदी कथा साहित्य को नितांत भिन्न भावबोध से परिचित कराया और एक अलग ही तरह के यथार्थ को अपनी रचनाओं में प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया। जैनेंद्र की कहानियों में अलग-अलग उम्र के पात्र और प्रसंग मौजूद हैं जो नितांत भिन्न - भिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों में रहते हुए मानसिक संघर्ष कर रहे हैं। मनोविज्ञान सम्मत मनुष्य की विभिन्न स्थितियों को जिस तरीके से उन्हें प्रस्तुत करने में सफलता मिली तो ऐसे में यदि उन्हें मनोविज्ञान को सशक्त ढंग से हिंदी साहित्य से आबद्ध करने और आरंभिक प्रस्तोता होने का जो श्रेय प्राप्त है, वह अकारण नहीं है। जब वे कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में अपना सबसे महत्वपूर्ण लिख रहे थे, उस समय परिवेश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियां भिन्न तरह की थीं। पूरे हिंदी साहित्य के लिए स्वतंत्रता-पूर्व की संवेदना अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित थी। ऐसे समय में उस प्रभाव से दरकिनार होकर नितांत भिन्न स्थितियों में व्यक्ति को महत्व देना, उसके प्राकृतिक मनोभावों के साथ संघर्ष को कथा साहित्य में प्रस्तुत करना, यह सब कुछ जैनेंद्र को उस पूरे परिवेश में अत्यंत विशिष्ट बनाता है।

जैनेंद्र की कहानियों और उपन्यासों में प्रेम और दांपत्य की विभिन्न स्थितियां अलग - अलग ढंग से चित्रित हुयी हैं। उनकी अलग-अलग कहानियों में प्रेम अपने सामाजिक संघर्ष के साथ तथा दांपत्य भी संघर्ष करता हुआ चित्रित हुआ है। गोविंद मिश्र लिखते हैं "हिंदी

कहानी में जैनेंद्र की पहचान जिन कहानियों से बनती है, वे उनकी प्रेम संबंधी कहानियां है। प्रेम व्यक्ति की सहज, स्वाभाविक मनोवृत्ति है, पर आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक कारणों से वह मुक्त नहीं होता और बाहरी स्थितियों से उसका संघर्ष अपरिहार्य होता है। जैनेंद्र की कहानियों में यह संघर्ष अनेक रूपों में चित्रित हुआ है।" जैनेंद्र की कहानी 'रुकिया बुढ़िया' प्रेम और उसके सामाजिक संघर्ष को कई दृष्टिकोण से देखने की कोशिश करती है। जब हम यह कहते हैं कि जैनेंद्र व्यक्ति-मनस के कुशल चितेरे हैं तो कहीं न कहीं मन में यह धारणा बनने लगती है कि वे समाज की तुलना में व्यक्ति को कहीं ज्यादा महत्व देते दिखाई पड़ते हैं। परंतु ऐसा है नहीं। जैनेंद्र की कहानियों की विशिष्ट भंगिमाओं को भलीभांति लक्षित करने पर यह देखा जा सकता है कि इन विभिन्न परिस्थितियों की स्वाभाविक परिणति सामाजिक द्रोह की अंतिम परिणति अर्थात बरबादियों और जीवन की तबाहियों के रूप में ही देखने को मिलती है। जैनेंद्र का इस तरह से प्रस्तुतीकरण निश्चित रूप से उनकी सामाजिक प्रतिबद्धताओं को प्रस्तुत करता है। रुकिया बुढ़िया कहानी को इसी विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है।

रुकिया बुढ़िया कहानी की प्रधान पात्र रुक्मिणी है जिसके माध्यम से जैनेंद्र जी ने अपने निहितार्थों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। कहानी अपने अनूठे शिल्प के चलते भी रुचिकर बनती है। पहले वर्तमान, फिर अतीत और पुनः वर्तमान - तक लाकर इस कहानी के माध्यम से जैनेंद्र ने अपने उद्देश्यों को स्पष्ट किया है। जैनेंद्र की कहानियों को पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि जैसे वह कहानी पाठकों के लिए नहीं बल्कि श्रोताओं के लिए तैयार करते हैं। जिस सिलसिलेवार ढंग से वे अपनी बात कहते चले जाते हैं, वह एक मुकम्मल संवाद की तरह महसूस होती है। जैनेंद्र कहानी लिखते नहीं, दरअसल कहते हैं और कही गई बात बस उसी ढंग से सुनी जा सकती है। घटनाओं को कहने का उनका अपना तरीका है और कहते हुए वे घटनाओं की तार्किकता-अतार्किकता को लेकर बहुत ज्यादा चिंता करते दिखायी नहीं देते हैं। बस बात कही जा रही है और सुनने वाले को सुनना है और उस कहे हुए से ही निहितार्थों की सिद्धि करनी है।

अपने वर्तमान में फूल बेचने वाली रुकिया बुढ़िया, अतीत में रुक्मिणी थी, जो खाते-पीते खत्री परिवार की इकलौती बेटी थी, "सो यह रूकिया नहीं थी, रुक्मिणी थी। फूल नहीं ले जाकर बेंचती थी, स्वयं बोलते फूल की नाईं घर के आंगन में चहकती फिरती थी और मां-बाप को धन्य करती थी। मां-बाप पैसे से हीन न थे, अच्छे खाते-पीते थे। उनकी यह पहली लड़की थी, और अब तक आखिरी भी थी।" अच्छे ढंग से पालन पोषण के बाद उस दौर में जैसा कि हर माता-पिता की सामाजिक समझदारी और जिम्मेदारी बेटी के विवाह कर देने में ही थी, रुक्मिणी भी विवाह योग्य हो जाने पर माता पिता के लिए चिंता का विषय बनती है, "इस भांति उमर वह हो आयी कि मां बाप को सोच होने लग गया। ब्याह करके अपने घर से दूर कर दें इसे, तब उन्हें चैन की नींद मिले। और पड़ोस में रहता था एक बढ़ई। ये लोग खत्री थे, और वह खाती और उस खाती के एक लड़का था। बड़ा होशियार उठा था। दिल्ली आए हफ्ते आया-जाया करता था और कल-पुर्जे की बड़ी बातें सीख गया था। नाम था दीना।" विवाह तय होता है, परंतु माता-पिता का तय किया हुआ विवाह हो नहीं पाता है "पर, विधि की गति अपरंपार है। ब्याह नहीं हुआ और ब्याह से एक रोज पहले, उसने देखा, अपने मां बाप के घर से टूटकर, रोती हुई, दीना के कंधे से लगी और बाहुओं में थमी, वह उसके साथ चली जा रही है। नहीं, उसको सुख नहीं है, उसके जी में दर्द है; कहां जा रही है,

उसको पता नहीं है; फिर क्या होगा, कुछ उसको खबर नहीं है; पर वह उसके हाथों में थमी, कंधे से लगी, जा रही है। वह समुद्र में ले जा के पटक देगा ? क्या बुरा है, पटक दे, वह आंख मूंदकर, उसका नाम लेती, डूब जाएगी। वह जा रही है।" यहीं से रुक्मिणी के सामान्य जीवन में असामान्यता आनी शुरू होती है, जो बढ़ते - बढ़ते अंत में रुकिया बुढ़िया, फूल बेचने वाली, नितांत गरीबी में गुजर बसर करने वाली रुकिया बुढ़िया तक आकर समाप्त होती है। अपनी कहानियों में जैनेंद्र बहुत कुछ अव्यक्त ढंग से कहते चलते हैं। घटनाओं के साथ चलते-चलते पाठक को यह समस्त तथ्य अप्रत्यक्ष रूप से भाँपने होते हैं। रुक्मिणी के विवाह न हो पाने का कारण रुक्मिणी और दीना के बीच प्रेम है। दोनों परिवारों के घर अगल-बगल हैं और कहानी यह संकेत करती है कि रुक्मणी और दीना एक दूसरे से बेहद प्रेम करते हैं। विवाह तय हो जाने के कारण रुक्मिणी बहुत दुखी है और विवाह के एक दिन पहले दीना रुक्मिणी से मिलता है। इसके बाद जैनेंद्र अचानक विवाह रद्द होने की सूचना देते हैं और रुक्मिणी दीना के साथ दिल्ली के लिए विदा होती है। इस बहाने जैनेंद्र उस आक्रोश को व्यक्त कर देते हैं जो संभवत: रुक्मिणी के परिवार में इस घटनाक्रम से रहा होगा।

किशोरवय का प्रेम समझदारी नहीं बल्कि आवेग का परिणाम होता है। दीना और रुक्मिणी बिल्कुल भिन्न प्रकृति के थे। रुक्मिणी के बारे में लेखक लिखता है "रुक्मिणी सुंदरी है, लज्जाशील है, सावन-भादों में जैसे पली है। प्रेम जैसी भारी चीज से भरी है, इससे स्वयं हल्की नहीं है। इसलिए प्रेमिका नहीं है, ग्रहिणी है। सेवा में उसका प्रेम तुष्ट है, उत्सर्ग में उसे तृप्ति है। अधिकारशील उसका प्रेम कम है, इसलिए उसमें लग सकता है कि चमक कम है, धार कम है, नमक कम है। फुहारे उसमें नहीं हैं, क्योंकि गहराई अधिक है।.... वह ग्रहिणी है, ग्रहिणी नहीं बन सकी, इसलिए अभागिन है। वह प्रेमभरी है, इससे प्रेमिका होना उससे नहीं संभलेगा।" वहीं दीना बिल्कुल भिन्न प्रकृति का युवा है। उसमें उतावलापन है। उसमें प्रेम को पा लेने की ललक तो थी, पर निभा लेने की शक्ति नहीं थी। दीना के संबंध में कहानी सूचना देती है "और दीना ! दीना उतावला है, इससे जल्दी अघा जाने वाला है। उसे अतृप्ति चाहिए, तृप्ति झेलने की उसमें सामर्थ्य नहीं। इसी से तृप्ति - तृप्ति की भूख उसमें लपटें मारती रहती है। और अब यहां वह बहुत सर पटक चुका है। उसे रोजी के लिए कोई काम भी नहीं मिल सका है। वह असंतुष्ट है। असंतोष भीतरी है, इससे सब ओर फैल रहा है, और आसपास जो है, उन सभी पर अपने फन पटकता है।" इस तरह नितांत भिन्न प्रकृति का होने के कारण उन दोनों का विवाह जिस परिणति को प्राप्त होता है, वह आश्चर्य का विषय नहीं था। दीना आवेगमय स्थिति के कारण रुक्मिणी से विवाह कर तो लेता है, उसे दिल्ली लेकर चला भी जाता है परंतु कोई कामकाज न मिल पाने के कारण फाँके पड़ने की नौबत आ जाती है। ऐसे में प्रेम का वायवीय बादल गायब हो जाता है और यथार्थ का कठोर धरातल सामने आ खड़ा होता है। जहां समस्त आकर्षण धुआं हो जाता है। और यहीं से रुक्मिणी का जीवन भी रसातल की ओर जाने लगता है।

रुक्मिणी, जो एक पत्नी की तरह अपने प्रेम को निभाना चाहती थी, अपने प्रेमी की कायरता के कारण अब हारी हुई थी। असफलता के अवसाद में दीना लंपटता का शिकार हो जाता है। यह बात भी संकेत रूप में कहानीकार पाठकों तक प्रेषित करता है। दीना चम्पो भाभी की ओर आकर्षित हो जाता है। यह बात रुक्मिणी भी जानती-समझती है। पर ऐसा लगता है, जैसे वह अपने किए पर बेहद पछता रही है। वह अपने को तकलीफ देकर शायद दंड देना

चाहती है। जीवन के कठोर धरातल ने उसके फैसले को गलत सिद्ध कर दिया है और ऐसी स्थिति में सब कुछ देखकर भी वह अनदेखा कर रही है और दीना से गालियां खा रही है, पिटना चाहती है "रुक्मिणी अंधी न थी। पर उसने सौंदर्य को अपने सजाकर न रखा। हारती गई और हार अपनाती गई - पर यह न किया। अपना कुछ भी, अधिकार के साथ संरक्षण कर रखने की बुद्धि, चेष्टा उसमें नहीं हुई, नहीं जागी। वह अपना सब-कुछ खो देने को तैयार होती जाने लगी। और चुपचाप एक-एक घड़ी काटकर उस दिन को जोहने सी लगी, जब उससे कह दिया जाए - निकल यहां से।" उसमें इतना साहस नहीं है कि वह अपनी भूल को सुधार सके। वह भीतर ही भीतर अपने मन में खुद को तरह-तरह की सजाएं देती है व सज़ा भोगना चाहती है। वह इस रिश्ते को बोझ की तरह बस ढो रही है। उसे लगता है कि उसे खुद कह दिया जाए कि वह यहां से निकल जाए और उसे अपनी इस गलती से निजात मिले। माता पिता का आश्रय छूट जाने के बाद आसान नहीं था कि इस जगह को भी यूं ही छोड़ दिया जाए पर जैनेंद्र मन के इन्हीं आघातों और संघर्षों को प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। विभिन्न स्थितियों में एक व्यक्ति अपने मन में क्या सोच सकता है, विचारों का उलझाव क्या हो सकता है, इन स्थितियों में वह क्या कर सकता है ? इन सभी को जैनेंद्र अपनी कहानियों में भली-भांति प्रस्तुत करते हैं। रूकिया बुढ़िया कहानी में भी रुक्मिणी के मानसिक संघर्ष के द्वारा वे इसी को चित्रित करते दिखाई देते हैं। संकटों ने प्रेम को चंद दिनों में ही भुला दिया और नौबत यह आ गयी कि "रुक्मिणी को लगा जैसे लात से सुनाया जाएगा, तभी उसके लिए अधिक ठीक होगा। वह सच, खूब पिटना चाहती है इस समय। जी के भीतर असह्य निराशा का उद्धत मुँह इसी भांति कुचलकर कुछ देर नीचा रहे तो तनिक चैन तो उसे मिले। वह कुछ नहीं बोली।"

विपरीत परिस्थितियों के द्वारा पैदा हुई यह खटास फिर भरी नहीं और जैसा कि दीना फरेबी स्वभाव का निकला, वह रुक्मिणी को अकेला और बेसहारा छोड़कर भाग निकला। एक दिन दीना और चंपो दोनों ही घर पर नहीं थे। बस यही रुक्मिणी के परिणय का अंत हो गया और उसने अभिशप्त होकर दंड भुगतने हुए अपने अंधकारमय भविष्य को स्वीकार कर लिया, "ऐसे दिन बीते कि जल्दी वह दिन आ गया, जब कहने की आवश्यकता ही जड़ - मूल से नष्ट हो गयी कि 'तू निकल जा'। उसने पाया कि वह वहां अकेली है, दीना नहीं है, चंपो भी नहीं है, जाने कहां चले गए हैं। और वह बे-पैसा है, और पिछले चार महीनों का मकान का किराया उससे ही लिया जाने वाला है।" इस मोड़ पर आकर रुक्मिणी का जीवन रुक्मिणी के रूप में समाप्त हो गया और आगे वह रुकिया बुढ़िया में तब्दील हो गयी। उसका जीवन जिस दर्रे में बंध गया, उसका कहानीकार ने कहानी में फूलवाली के रूप में वर्णन किया है। जहां उसका घर दिन में रात की तरह लगता है और रात में नरक की तरह। उस मोहल्ले में कुछ बच्चे बाल-सुलभ स्वभाव वशव उसे नानो कह कर बुलाते हैं। वह नानी, नानो आदि के रूप में बदलती हुई जीवन में आगे घिसटती रहती है। दीना ने जिस ढंग से उसकी अपेक्षाओं का अंत किया था, उसके बाद उसे किसी से जैसे कोई अपेक्षा ही नहीं रह जाती। वह फूल और प्रसाद बेचती है। अपनी जगह पर चुपचाप सिर झुकाए बैठी रहती है। आने-जाने वालियों को फूल और प्रसाद का दोना पकड़ा देती है। नजरें उठाकर भी नहीं देखती। पैसे की अपेक्षा भी नहीं करती। किसी ने पैसे उसके सामने डाल दिए तो डाल दिए, कोई बिना दिए निकल गया तो निकल गया। एक भग्न हृदय जीवन अब उसकी पूंजी था और इसी के साथ रुकिया बुढ़िया की कहानी समाप्त हो जाती है।

जैनेंद्र के विषय में यह माना जाता है कि वे व्यक्ति मनोविज्ञान के कुशल चितेरे हैं। व्यक्ति-मन की परतों को उधेड़ने का सार्थक प्रयास उनकी कहानियों में मिलता है पर जिस भी वर्ग की बात वे अपनी कहानी में कह रहे होते हैं, वह पात्र विशेष अपने मन के साथ साकार हो जाता है। यह भी माना जाता है कि उनकी कहानियां व्यक्ति-केंद्रित हैं। समाज व्यक्ति के पीछे कहीं रह जाता है परंतु यह तथ्य उतना ठीक नहीं लगता। रूकिया बुढ़िया कहानी इस बात का सार्थक उदाहरण है। जिस ढंग से यह पूरी कहानी चलती चली जाती है, रूकिया जिस मनोदशा में पूरी कहानी में दिखाई देती है, वह कहीं-न-कहीं समाज को केंद्र में रखता ही है। माता-पिता और समाज का तिरस्कार कर उसने दीना को अपनाया था। क्षणिक आवेग में लिए गए इस फैसले को आने वाले समय ने गलत साबित कर दिया। बहुत समय तक दीना विपरीत परिस्थितियों को झेल नहीं पाया और अंततः एक दूसरी स्त्री के साथ रुक्मिणी को अकेला और बेसहारा छोड़कर भाग गया। इस स्थिति के बाद दीना से विवाह के बाद जैसे-जैसे रुकमणी को जीवन की कटु सच्चाई समझ में आती गयी, वैसे-वैसे निश्चित रूप से एक अपराधबोध उसके भीतर भरता चला गया। यह अपराध बोध, माता पिता और समाज सभी के प्रति था। इसी के कारण उसमें खुद को दंडित करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ और पहले दीना तथा फिर बाद में अकेले रहते हुए आजीवन वह खुद के साथ यही करती रही। खुद को दंडित करने की प्रवृत्ति के चलते ही संभवत वह अपने घर-परिवार से पुनः संपर्क नहीं करती। उसे मालूम है कि उसने जो किया है, वह ठीक नहीं है। इन निहितार्थों को लिए हुए यह कहानी केवल व्यक्ति केंद्रित कहानी नहीं रह जाती है। बल्कि समाज स्वतः इसमें केंद्र में आ जाता है। रुकिया के रूप में जैनेंद्र उस दुस्साहस का परिणाम प्रस्तुत करते दिखायी देते हैं, जो समाज में अब आम-सा हो गया है। इस तरह रुकिया बुढ़िया कहानी जहां एक तरफ रुक्मिणी के संघर्ष और द्वंद को प्रस्तुत करती है, वहीं एक सार्थक संदेश देने का भी प्रयास करती है।

५.४ दो सहेलियाँ : मूल संवेदना

कहानीकार जैनेंद्र की कहानी 'दो सहेलियां' अपने समय-संदर्भों में स्त्री मनोदशा को अभिव्यक्त करने वाली सार्थक कहानी है। जसोदा और वसुधा नामक दो सहेलियों के माध्यम से कहानीकार ने स्त्री जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं और इनके प्रति द्वंद्व तथा संघर्ष को बखूबी अभिव्यक्त किया है। जसोदा और वसुधा नामक दो सहेलियों पर आधारित यह कहानी दोनों के जीवन का मूल्यांकन सा करती दिखाई देती है। विवाह के बाद की नितांत अलग-अलग परिस्थितियों के बावजूद वे अपनी-अपनी स्थितियों से संतुष्ट नहीं दिखाई देतीं। दोनों के जीवन में परिस्थितियां अलग तरीके से घटित हो रही हैं। जसोदा जहां अपने पति के दिखावे और वैचारिक दुविधाओं के कारण तालमेल नहीं बिठा पाती, वहीं वसुधा अपने पति की अत्यधिक लगाव के चलते ऊब और घुटन महसूस करती है और सारी सुविधाओं के बावजूद वह कहीं न कहीं अपने जीवन से असंतुष्ट दिखाई देती है। जैनेंद्र ने इन्हीं समस्त स्थितियों का उद्घाटन समस्त वैचारिक सरोकारों के साथ इस कहानी में किया है। इस कहानी में दोनों सहेलियां दो अलग-अलग ध्रुवों में खड़ी दिखाई देती हैं। एक तरफ जसोदा जहां अपने असंतुष्ट वैवाहिक जीवन के बावजूद उन्मुक्त निर्णय ले पाने में अपने को असमर्थ पाती है, वहीं दूसरी तरफ वसुधा की संतुष्टि का कोई व्यवहारिक कारण तो समझ में नहीं आता परंतु उसकी असंतुष्टि से एक बदलाव का संकेत अवश्य मिलता है

और वह बदलाव है अपनी स्थितियों में रहकर स्वातंत्र्य चेतना को जीवित और विकसित करना। वसुधा में स्वातंत्र्य-चेतना अधिक मुखर है, जो नवीन स्थितियों की ओर संकेत करती दिखाई देती है, परिवेश के बदलाव को चिन्हित करती दिखाई देती है। जैनेंद्र ने इस कहानी में इस समस्त घटनाक्रम को दोनों सहेलियों के संवादों के माध्यम से बखूबी अभिव्यक्त किया है, जिसे आगे कहानी के विश्लेषण में देखा जा सकेगा।

५.४.१ दो सहेलियाँ : परम्परा और रूढ़ियों के बदलाव का संकेत:

प्रत्येक लेखक का साहित्य अपनी निजी अभिरुचियों और वैचारिक प्राथमिकताओं से बेहद प्रभावित होता है। जैनेंद्र की अपनी अभिरुचि वाह्य-परिस्थितियों के प्रभाववश उत्पन्न हुयी व्यक्ति-मन की आंतरिक व्यथा को अभिव्यक्त करने में रही है और अलग-अलग समुदाय और वर्ग के पात्रों के सहारे उन्होंने अलग-अलग परिस्थितियों के द्वन्द्व और संघर्ष को अपनी कहानियों में परिपूर्णता के साथ अभिव्यक्त किया है। यह कहानियां जहां एक तरफ परिवेश के प्रति विशिष्ट चिंतन को अभिव्यक्त करती हैं, वहीं दूसरी तरफ समाज में हो रहे बदलावों की ओर भी संकेत करती हैं।

भारतीय समाज में स्त्री वर्ग ऐसा वर्ग रहा है, जो अपने लिए निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रहा। उसके जीवन और विचारों पर सदा पुरुष-सत्तात्मक मानसिकता हावी रही है। उसकी अपनी रुचियों - अभिरुचियों का कोई मतलब नहीं रहा है। शास्त्रों और सामाजिक परंपराओं - रूढ़ियों के अनुसार उसका जीवन एक निश्चित दिशा की ओर गमन करता रहा है। इन परंपराओं - रूढ़ियों के चलते उसके अपने स्वातंत्र्य-बोध और अस्तित्व-बोध का प्रश्न सदैव गौण ही रहा है। जैनेंद्र ने अपनी कहानियों में विविध परिस्थितियों में स्त्री जगत की विशिष्ट सोच को भी भरसक चित्रित करने का प्रयास किया है। उनकी कहानी 'दो सहेलियां' इस दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय कहानी है। यह कहानी बदलते समय और संदर्भों में स्त्री की इच्छाओं - आकांक्षाओं, उसके मानसिक द्वन्द्व और संघर्ष तथा उसके जीवन की विडम्बनाओं को अभिव्यक्त करती है।

जसोदा और वसुधा नामक दो अभिन्न सहेलियों की यह कहानी स्त्रियों की मानसिक द्वंद्व और संघर्ष को व्यक्त करने वाली कहानी है। सत्तर रुपये तनख्वाह पाकर किसी तरह से जीवन व्यवस्थित करने वाली जसोदा और हजार रुपए तनख्वाह खुद घर ले आने वाली वसुधा का जीवन अत्यंत भिन्न परिस्थितियों से गुजर रहा है। एक जिसकी हर भौतिक चाह टूटकर खत्म हो चुकी है और दूसरी जो भौतिकता और सुविधाओं से इतनी घिरी है कि घुटन महसूस करती है। दोनों सहेलियां लगभग पैंतालीस वर्ष की अधेड़ अवस्था में है। कॉलेज के समय की मित्रता बीच के समय-अंतराल में खत्म नहीं हुयी और वह जब दोबारा मिलीं तो उसी अनौपचारिक और अपनत्व के भाव से। दोनों की अपनी तरह की व्यथाएं हैं, जिन्हें जैनेंद्र उनके आपसी संवाद के द्वारा बड़ी सहजता से अभिव्यक्त कर देते हैं। जसोदा अर्थात जसु का वैवाहिक जीवन क्षत-विक्षत है और अपने सबसे छोटे बेटे मोहन को साथ रखे हुए वह शिक्षक की नौकरी करके किसी तरह जीवन यापन कर रही है। कहानी में उसका वर्णन करते हुए कहानीकार कहता है, "छः बच्चे जसोदा के भी थे, लेकिन विवाह असफल हो गया था। पति कहीं थे, यह यहां थी। बाल-बच्चे सब अपनी जगह जम गए थे, एक मोहन पास रहता था। बाप कभी के मर चुके थे कि जिनके रहते सब हरा-ही-हरा था।

अब बानक सब बिगड़ चुका था। कहीं स्कूल में पढ़ा कर जीविका चलाती थी और ज्यों-त्यों सबसे छोटे मोहन को पास रखकर कॉलेज पढ़ा रही थी।" इस तरह जसोदा एक ऐसे पात्र के रूप में चित्रित है, जो पति से अलग रहते हुए संघर्षपूर्ण आत्मनिर्भरता के साथ अपने स्वाभिमान को सुरक्षित किए हुए है। महत्वपूर्ण यह देखना है कि उसके अकेलेपन का कारण क्या है ? उसका वैवाहिक जीवन बिना किसी हिंसा के अलगाव के रूप में क्यों उपस्थित है। कहानीकार जसोदा की इस समस्या को व्यक्त करते हुए इसके पीछे अनमेल विचारों को देखता है। दरअसल जसोदा के पति के व्यक्तित्व में एक जबरदस्त विरोधाभास है। दिन और रात में नितांत भिन्न व्यक्तित्व में दिखाई देने वाला यह लिजलिजा व्यक्तित्व संभवतः जसोदा को पच नहीं रहा था। एक लंबे समय तक इसी वेदना और असहज रिश्ते को सहन करते हुए अंततः वह अलगाव को अपना लेती है। कहानी में इन स्थितियों को कहानीकार ने कुछ इस ढंग से दर्शाया है, "वे उपदेश देते हैं। जी से चाहते हैं, मुँह से उपदेश देते हैं ! संयम का उपदेश ! अपने और मेरे बीच 'सत्यार्थप्रकाश' रखते हैं। सत्य के अर्थ के प्रकाश को सामने पाती हूँ, तो जानती नहीं कि मैं उसे कैसे उलांघू और उन तक कैसे पहुँचूँ ? फिर जब एकाएक उनका बढ़ा हुआ हाथ मेरी तरफ आता है तो मैं किसी तरह नहीं समझ पाती हूँ कि यह किस सत्य के अर्थ का प्रकाश है, खोई रह जाती हूँ। तो क्या तू कहेगी कि यह मेरी भूल है ? छः बच्चों की मैं मां बन गयी - कैसे बन गयी, अब यही अचरज होता है।"

दूसरी तरफ वसु अर्थात वसुधा है। वसुधा एक प्रतिष्ठित संस्थान में नौकरी कर रही है, जहां से उसे हजार रुपए प्रतिमाह वेतन मिलता है। दिन और रात उसका ख्याल रखने के लिए उसका पति है, जो उसकी हर छोटी मोटी जरूरत के लिए मुंह ताकते पहले से ही सामने बैठा रहता है। पत्नी के प्रति अपने उत्तरदायित्व को वह इतना ज्यादा निभा रहा है कि वसुधा को इन स्थितियों से ही घृणा है। उसे अपना पति लिजलिजे स्वभाव का लगता है, जिसे सहन करना उसके लिए बेहद मुश्किल है। उसने वैवाहिक समझौते को किसी और जरूरत के लिए ही बनाए रखा है। जसोदा की अपेक्षा वसुधा की स्थितियां नितांत भिन्न है। जसोदा अपने वैवाहिक जीवन की कृत्रिमता और दोगलेपन से घुटन महसूस करती है, परंतु वसुधा की स्थितियां नितांत भिन्न हैं। उसके पति का पूर्ण समर्पण उसके लिए उलझन का कारण बन जाता है। वह थोड़ा फासला चाहती है, परंतु यह फासला उसे मिल नहीं पाता और इसीलिए वह मौका पाते ही जसु के घर भाग आती है। आज भी मौका मिलने पर वह भागी। कहानीकार बसु की उलझन को व्यक्त करते हुए लिखता है, "पर इस उमर में तो वह सहारा भी है। एक उमर थी, मैं घूमा करती थी। लेकिन अब क्या यह आराम की बात नहीं है कि घर पहुंचती हूं कि सब किया-कराया मिलता है ? बस इतना है कि कभी उस सेवा से मन इस कदर तंग आ जाता है कि बस क्या करूं ? मर्द एक काम में मर्द हो तो उतने से तो चलता नहीं है। बाकी जिंदगी में भी तो उसे मर्द होना चाहिए। पर उन्हें बस क्या कहूँ।" कहानीकार दोनों सहेलियों की परिस्थितियों को जिस ढंग से अभिव्यक्त करता है, उसमें जसु की परिस्थितियों के अनुसार उसकी व्यथा का कारण तो समझ में आता है परंतु वसु का वर्णन करते समय सिवाय इसके कि ज्यादा परवाह उसे सहन नहीं हो रही और कोई कारण समझ में नहीं आता। वसु निश्चित रूप से ऐसे में बंधन ज्यादा महसूस कर रही है और प्रतीत होता है कि, वह इनसे मुक्ति चाहती है। यानी बंधी-बंधाई दिनचर्या से अलग हटकर कुछ अपना व्यक्तिगत जीने और करने की चाह उसकी व्यथाओं का कारण है।

इस कहानी में जैनेंद्र ने दोनों सहेलियों के एकांत वार्तालाप के द्वारा जहां उनकी मानसिक व्यथा और संघर्ष को अभिव्यक्त किया है, वहीं एक खास तरह की स्वातंत्र्य-चेतना दोनों सहेलियों के वार्तालाप में देखने को मिलती है। और इस वार्तालाप का आयोजन कहानीकार ने अकारण नहीं किया है। दरअसल यह स्वातंत्र्य-चेतना युग संदर्भ से निकल कर आयी है। निश्चित रूप से जैनेंद्र जिस समय रचना कर्म में रत थे, उस दौरान सैद्धांतिक रूप में भले ही स्त्री स्वातंत्र्य को लेकर कितनी ही बातें की जाती थीं, परंतु व्यवहारिक दृष्टि से एकमात्र यही तथ्य प्रधान रूप से देखने को मिलता था कि वे सभी पुरुष सत्तात्मक दिशानिर्देशों के द्वारा संचालित होने को बाध्य थीं। कहानी की संवेदना निश्चित रूप से इसी पुरुष-सत्तात्मक मानसिकता के प्रति एक विद्रोह प्रकट करती है। परंतु जैनेंद्र यहां भी सावधान हैं। वे मर्यादाएँ लांघने को तैयार नहीं है।

कहानी में जसु के अकेलेपन को देखते हुए वसु उसे अपने कॉलेज के दौरान के पुरुष मित्र के प्रति झुकाव के लिए प्रेरित करती है। जसु, जिसे परंपराएं और रूढियाँ तोड़ने में कहीं न कहीं संकोच है, उसके संकोच को तर्क से संतुष्ट करते हुए वसु कहती है, " उसकी आंखों में खोज और भटकन देखी तो भागी आयी हूं तेरे पास। अरी, मेरे कमीशन को ही पकाने के खातिर एक बार पिघल आ। नहीं तो जानती है क्या होगा ? होगा यह है कि मैं जगह ले लूंगी और मुझे बंधन नहीं है। पति हैं, और वे इतने प्रेमी हैं कि कुछ पूछना-जानना नहीं चाहते। मेरे लिए वह इतनी सुविधा है कि सब कुछ मेरे लिए संभव है।" जैनेंद्र की शैली और स्वभाव के अनुरूप कहानी एक साथ एक दुविधा को जीती हुई आगे बढ़ती है। एक तरफ परंपरा से अभिन्नता को लेकर एक आक्रोश सा दिखाई पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ परिवर्तन के संकेत भी देखने को मिलते हैं। परिवर्तन जो अभी मानसिक धरातल पर घटित हो रहे हैं। परंतु ऐसी स्थिति में स्वातंत्र्य चेतना पूरी तरह से मुक्त भी नहीं है। इसी की अभिव्यक्ति वसु के द्वारा कहे गए इस संवाद में देखने को मिलती है, जो जीवन जीने की विवशता को अभिव्यक्त करता है, "जी के काबू में भी क्यों होती है ! मुझे देख, मैं भी अपने को संभाले हूं कि नहीं ? उनको तो तैने देखा है। है कि नहीं चश्मेबद्दूर। लेकिन निभाये जा रही हूं। सच कहती हूं, जी में भी कभी ऐसी घिन होती है कि आत्म-हत्या कर लूं। पर नहीं, रोज पलंग पर साथ सोना पड़ता है। यही कहती हूं, जसु, मन के अलावे में रहने से फायदा नहीं है। मन मार कर ही रहना हो पाता है।"

इस कहानी में परंपरा से विचलन न कर पाने का द्वंद्व और संघर्ष जसु के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है। वहीं स्वतंत्रय - चेतना की विकलता वसु के व्यक्तित्व से प्रकट हो रही है। कहानीकार ने इन दोनों सहेलियों के माध्यम से दो भिन्न प्रकृतियों और मंशाओं को अभिव्यक्त करने वाले चरित्रों का सृजन किया है। परंपरा से विचलन न कर पाने की जो बात है, वह जसु के इस संवाद से व्यक्त होती दिखाई पड़ती है, "तुझे सौगंध है कि तुम न कभी पति की बात करोगी, न उस चेहरे की बात करोगी जो मेरे सारे कष्टों का कारण रहा। उसका प्यार न होता तो मैं तनिक से ही कष्ट से कभी की डिग चुकी होती और अब तक बड़े आराम से होती। जिससे आराम पास फटक भी नहीं सका और कष्ट को संपूर्ण सार्थक भाव से अपनाये चली आयी हूँ - उस चेहरे को मैं किसी तरह सामने नहीं पाना चाहती हूँ।" जसु के व्यक्तित्व में कहीं न कहीं परंपरा से मढ़ दिए गए संस्कार भी दिखाई दे रहे हैं परंतु वसु इन सभी से मुक्त है। यहां गौर करने वाली एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता कहीं न कहीं इन के विचारों को आकार देने में अपना काम कर रही है। जसु

में वसु की तरह विद्रोह कर पाने का साहस नहीं है। उसके पीछे उसकी अपनी आर्थिक परिस्थितियां और विवशताएँ हैं। दूसरी तरफ वसु की आत्मनिर्भरता उसे इस तरह के फैसले लेने में सक्षम बनाती दिखायी पड़ती है।

इन सभी स्थितियों को अभिव्यक्त करते हुए जैनेंद्र किसी निर्णय तक नहीं पहुंचना चाहते या कह लें वे किसी तरह का निर्णय देना नहीं चाहते। वह तो बस स्थितियों का चित्रण करते हैं और संभवत पाठकों पर ही अंतिम निर्णय छोड़ देते हैं। जसोदा की स्थितियां क्या हैं ? क्यों हैं ? यह तो वे दिखा देते हैं, पर क्या और क्यों के मद्देनजर क्या होना चाहिए, इस पर वे किसी तरह की बात नहीं रखते। क्या पाठकों को यह कहानी पढ़ते हुए और जसोदा के व्यक्तित्व से गुजरते हुए यह सोचना चाहिए कि जसोदा के वैवाहिक असफलता के पीछे जितना हाथ जसोदा के पति के दुविधापूर्ण व्यक्तित्व का है, उतना ही जसोदा की मन:स्थिति का भी नहीं है। क्योंकि जसोदा कॉलेज के दिनों के अपने एक मित्र को विवाह के इतने समय के बाद भी लगातार याद रखती है। पति और पत्नी के बीच में यह तीसरा कहीं न कहीं लगातार स्थितियों के मूल्यांकन का कारण भी बन रहा है। क्या कहानीकार दिखाना चाहता है कि जसोदा का वैवाहिक निर्णय गलत था ? निश्चित रूप से जिस समय और परिवेश की यह कहानी है, उस समय विवाह के संबंध में स्वतंत्र निर्णय एक स्त्री के लिए बहुत बड़ा दुस्साहस था। कम से कम मध्यमवर्ग तो इस बेड़ी में बुरी तरह जकड़ा हुआ ही था। ऐसी स्थिति में क्या वह यह निर्णय ले सकती थी ? निश्चित रूप से नहीं परंतु इन समस्त स्थितियों को एक लंबे समय तक सहन करने के बाद अंततः विवाह संस्था के प्रति वह विद्रोह कर देती है। उसे कृत्रिम नैतिकता से बेहद घृणा है और इसी के चलते उसे अपने पति से अलग रहना कहीं ज्यादा ठीक लगता है। भले ही उसके लिए उसे कितनी भी तकलीफ और परेशानियां उठानी पड़ रही हैं। इसीलिए वह किसी विद्यालय में सत्तर रुपये तनख्वाह पर शिक्षण कार्य कर रही है। जिम्मेदारी के रूप में छः संतानों में से सबसे छोटा मोहन इसके साथ ही रह रहा है, जिसे कॉलेज में जिस-तिस किसी भी तरह से वह पढ़ा-लिखा रही है। उसे यह सारा संघर्ष अपने वैवाहिक जीवन के कृत्रिमता, दुविधा और दोगलेपन से कहीं ज्यादा सहज लगता है।

दूसरी तरफ वसुधा की स्थितियों को लेकर क्या चिंतनीय हो सकता है ? वसुधा या वसु, जिसके पास कोई आर्थिक अभाव नहीं है। पति के रूप में जिसके पास अच्छा भावनात्मक सहारा है। जो गृहस्थी में कंधे से कंधा मिलाकर उसका साथ दे रहा है। नौकरी पेशा वसुधा के व्यक्तित्व को पूर्णता देने का काम कर रहा है। इन सब दिखायी दे रही स्थितियों के पीछे और क्या है, जो वसुधा की असंतुष्टि का कारण है। जसोदा की स्थितियां ऐसी हैं कि सचमुच तनाव और संघर्ष की स्थिति को समझा जा सकता है। वैचारिक रूप से अनमेल होना एक लंबे समय तक साथ देने के लिए काफी बुरी स्थिति है और संभवतः इसी के चलते जसोदा को रोज-रोज होने वाली घुटन से मुक्ति आवश्यक लगी और इसके साथ-साथ पति का नकारापन, खोखली वैचारिकता के चलते लगातार आर्थिक अभावों की गिरफ्त में आते जाना, छः बच्चों की जिम्मेदारियां न निभा पाना इतने कारण काफी हैं वैवाहिक असंतुष्टि के लिए। परंतु कहानीकार दो सहेलियां कहानी के माध्यम से स्त्री जीवन की विषमताओं को चित्रित करने का प्रयास कर रहे हैं। एक तरफ जहां स्थितियां प्रतिकूल हैं, सचमुच विवाह एक बोझ है, वहीं दूसरी तरफ क्या अनुकूल परिस्थितियों से वसुधा इतनी

आघाई है कि उसे असंतुष्टि और बेचैनी महसूस हो रही है ? यह भी एक अत्यंत विकट स्थिति है। जिसका आभास कहानी पढ़ते हुए निरंतर होता है।

वसुधा नए जमाने की कामकाजी स्त्री है। वह समाज में स्त्री वर्ग में हो रहे नए परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करने वाली पात्र है। उसका जिस तरह का व्यवहार लेखक के द्वारा दिखाया गया है, वह कहीं न कहीं बड़े परिवर्तनों का सूचक है। वह अपनी सहेली जसोदा के दुखों और तनावों को समझती है और उसके बाद वह सुझाव देते हुए कहती है, "अरे तू उस आदमी को ले जो जी से चाहता है, उस पर क्यों अटकती है जो मुंह से ज्ञान बघारता है।" जसोदा के वैवाहिक जीवन की टूटन और विडंबना पर वह उसे जो मार्ग अपनाने के लिए कहती है, वह अमूमन परंपरा से विद्रोह का सूचक और प्रतीक है। वह इस बात का भी प्रतीक है कि समाज में किस तरह के बदलावों की आवश्यकता है। विवाह जैसी संस्था की रूढ़ता को लेकर भी यह एक विकल्प प्रस्तुत करती है। जो चीज जीवन में सहज नहीं है, उसको बनाए रखने का भी कोई मतलब नहीं है। सहज जीवन के लिए मोह को उतार फेंकना आवश्यक है और इसीलिए वसुधा जसोदा को बार-बार प्रेम के प्रति समर्पित हो जाने की ओर धकेलना चाहती है। यद्यपि कहानी में जसोदा ऐसा करते दिखाई नहीं गई परंतु यह एक बड़े बदलाव का संकेत है। स्त्री जीवन की विसंगतियों का संकेत है और उन विसंगतियों से निकलने के लिए क्या करना चाहिए, इसका संकेत है। यह रूढ़ियों के विरुद्ध खड़े हो जाने का प्रतीक है। इस तरह यह कहानी अपने समय संदर्भों को अभिव्यक्त करती है।

५.५ सारांश

इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की दो कहानियां रुकिया बुढ़िया और दो सहेलियां के संवेदना पक्ष का विशद अध्ययन किया गया है जैनेंद्र की शैली है कि दे महत्वपूर्ण और अंतर्विरोध ही मुद्दों को अपनी कहानियों में स्थान देते हुए 2 तरह से सार्थक कार्य करते हैं पहला तो यह कि वे अंतर्विरोध पूर्ण जीवन की विडंबन आत्मक स्थितियों में फंसे हुए पात्रों के पक्ष का विशद अध्ययन करते हुए यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि उनके पात्र अपने जीवन के प्रति किस तरह का दृष्टिकोण रखते हैं जीवन को भी कितनी इमानदारी से निभा पाते हैं और फिर दूसरा पक्ष कि उनके पात्र और समाज के बीच जो द्वंद्व और संघर्ष की स्थितियां हैं उनको भी स्पष्ट करते दिखाई देते हैं रुकिया बढ़िया कहानी में रुपया रुकमणी से रुकिया तक पहुंचने की परिस्थितियों और विसंगतियों को तो उन्होंने दिखाया ही है साथ ही रुकमणी के कृत्य को जिस तरह घटते हुए अंजाम तक दिखाया है वह कहीं ना कहीं सामाजिक आस्थाओं से विचलन के दुष्परिणाम के रूप में देखा जा सकता है इसी प्रकार दो सहेलियां कहानी मैं उन्होंने जसोदा और वसुधा के मानसिक संघर्ष को समस्त वैचारिक सरोकारों के साथ अभिव्यक्त किया है इस कहानी में आधुनिक बदलते हुए संदर्भों में जीवन के प्रति बदलता हुआ नजरिया मौजूद है विवाह संस्था को लेकर दो भिन्न स्थितियों में फंसी हुई स्त्रियों की उम्र और घुटन को उन्होंने पात्रों के मानसिक द्वंद्व और संघर्ष के द्वारा ही अभिव्यक्त किया है यह जैनेंद्र की अपनी विशिष्ट शैली है वे अपने वैचारिक सरोकारों को इसी भांति सिद्ध करते दिखाई देते हैं इस इकाई में जैनेंद्र की अति महत्वपूर्ण मानी जाने वाली चंद्र कहानियों में से दो कहानियों रुकिया बुढ़िया और दो सहेलियां का विश्लेषण किया गया है।

५.६ वैकल्पिक प्रश्न

१. जैनेन्द्र किस प्रकार के कथाकार माने जाते हैं ?

(A) मनोवैज्ञानिक (B) मार्क्सवादी

(C) प्रकृतवादी (D) उत्तर-आधुनिकतावादी

२. रुक्मिणी ने किससे विवाह किया ?

(A) मोहन (B) सोहन

(C) दीना (D) राघव

३. रूकिया का वास्तविक नाम क्या है ?

(A) लक्ष्मी (B) रुक्मिणी

(C) सुमित्रा (D) मृणालिनी

४. वसुधा की सहेली का क्या नाम है ?

(A) जसोदा (B) विशाखा

(C) लक्ष्मी (D) रुक्मिणी

५. जसोदा को कितनी तनख्वाह मिलती थी ?

(A) पचास रुपये (B) सत्तर रुपये

(C) अस्सी रुपये (D) सौ रुपये

६. जसोदा के बेटे का क्या नाम है ?

(A) रोहन (B) मोहन

(C) सोहन (D) बोधन

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. रुकिया के जीवन की विसंगतियां क्या है ?

२. जसोदा के वैवाहिक जीवन के अंतर्विरोध क्या है ?

३. दीना के चरित्र पर टिप्पणी लिखिए ?

४. वसुधा के जीवन की विडंबना का विश्लेषण कीजिए ?

५.८ बोध प्रश्न

१. रुकिया बुढ़िया कहानी के आधार पर रुकमणी के चरित्र का वर्णन कीजिए ?

२. रुक्मिणी के जीवन की समस्याओं का विस्तार से विश्लेषण कीजिए ?

३. रुकिया बुढ़िया कहानी के प्रतिपाद्य का वर्णन कीजिए ?

४. 'दो सहेलियाँ' कहानी में चित्रित समस्याओं का विश्लेषण कीजिए ?

५. जसोदा के मानसिक द्वंद्व और संघर्ष का चित्रण कीजिए ?

६. वसुधा के चरित्र का विश्लेषण करते हुए कहानीकार के मंतव्य को सिद्ध कीजिए ?

५.९ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

१. चतुर्वेदी, रामस्वरूप - हिंदी गद्य : विन्यास और विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

२. श्रीवास्तव, परमानंद - कहानी की रचना प्रक्रिया; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

३. मधुरेश - हिंदी कहानी का विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

४. चौधरी, सुरेंद्र - हिंदी कहानी प्रक्रिया और पाठ; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

५. मंडलोई, लीलाधर (संपादक) - जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

६. मिश्र, गोविंद - जैनेंद्र कुमार; साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

७. राय, गोपाल - हिंदी कहानी का इतिहास; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

*****

६

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
कहानी - अपना अपना भाग्य और खेल

इकाई की रूपरेखा

६.१ इकाई का उद्देश्य

६.२ प्रस्तावना

६.३ अपना-अपना भाग्य : मूल संवेदना

६.३.१ अपना अपना भाग्य : निर्मम अमानवीयता का बयान

६.४ खेल : मूल संवेदना

६.४.१ खेल : बचपन को साकार करती कहानी

६.५ सारांश

६.६ उदाहरण-व्याख्या

६.७ वैकल्पिक प्रश्न

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

६.९ बोध प्रश्न

६.१ इकाई का उद्देश्य

आपके पाठ्यक्रम में जैनेंद्र की निर्धारित दस कहानियों में से इस इकाई के अंतर्गत 'अपना अपना भाग्य' और 'खेल' इन दो कहानियों का विश्लेषण किया गया है । जैनेंद्र की कहानियाँ, विषय-वैविध्यता की दृष्टि से अनोखी हैं । हालांकि एक कथाकार के रूप में उनकी प्रेम और दांपत्य संबंधों को लेकर लिखी गई कहानियाँ कहीं ज्यादा चर्चित हुयीं । इस इकाई के अंतर्गत निर्धारित दोनों कहानियां भिन्न विषयों पर आधारित हैं । 'अपना अपना भाग्य' सामाजिक विडंबना और मनुष्यों में बढ़ रही असंवेदनशीलता की प्रवृत्ति को उजागर करने की दृष्टि से उल्लेखनीय कहानी है । जैसा कि जैनेंद्र मानवीय मनोभावों के यथार्थ को प्रस्तुत करने हेतु समर्थ कथाकार माने जाते रहे हैं, इस कहानी में भी उन्होंने मनुष्यों में खोखली सहानुभूति की प्रवृत्ति को केंद्र में रखा है और उस पर तीक्ष्ण व्यंग किया है । आधुनिक जीवन के नग्न और बेशर्म यथार्थ को प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह कहानी जैनेंद्र की अत्यंत विशिष्ट कहानियों में गिनी जाती है । इस इकाई में प्रस्तुत दूसरी कहानी 'खेल' 1929 में प्रकाशित जैनेंद्र की आरंभिक कहानी है, जिसमें जैनेंद्र ने बाल मनोविज्ञान को बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया है । बच्चों का सहज भोलापन इस कहानी की शक्ति है, जिसे जैनेंद्र भली-भांति प्रस्तुत कर सके हैं ।

६.२ प्रस्तावना

जैनेंद्र साहित्य के अध्येताओं ने यह बात उन्हें पढ़ते हुए स्पष्ट रूप से महसूस की है कि जैनेंद्र अपने समय से कुछ आगे के साहित्यकार हैं । उनके पास ऐसी दूरदर्शिता है कि वे भविष्य की संभावनाओं का पूर्वानुमान कर लेते हैं । जैनेंद्र की कहानियों और उपन्यासों के विषय कुछ इसी प्रकार के हैं । बहुत सारी सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की कई सारी वर्जनाएँ और गर्हित विषय उनकी कहानियों में विश्लेषण का विषय बने हैं । जैनेंद्र समस्याओं पर विचार करते समय कई बार दार्शनिक अंदाज में ऐसे विकल्पों की तरफ बढ़ जाते हैं, जो संभवतः वास्तविक जीवन में काफी कठिन होती हैं । परंतु एक साहित्यकार का कर्तव्य ही है, समस्याओं का विश्लेषण और उनके संदर्भ में निराकरण हेतु विकल्प । ऐसी स्थितियाँ विशेष रूप से स्त्री जीवन की जुड़ी हुई विडंबनाओं पर उनके साहित्य में देखने को मिलती हैं । पाठ्यक्रम में निर्धारित दस कहानियों में से जैनेंद्र की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो मानव जीवन की ऐसी स्थितियों का खुलासा करती हैं, जिनसे बढ़ रही असंवेदनशीलता और अमानवीयता का परिचय मिलता है । 'अपना-अपना भाग्य' ऐसी ही कहानी है ।

इसके अतिरिक्त जैनेंद्र अपनी कहानी रचना के आरंभ से ही संवेदना और शिल्प दोनों ही स्तरों पर अपने समकालीन कहानीकारों से कुछ अलग थे । उनकी कहानियों में वाह्य-परिस्थितियों के चित्रणों और विश्लेषण के बजाय मानवीय पात्रों की आंतरिक स्थितियों का साक्षात्कार अधिक हुआ है । जैनेंद्र के दौर में पात्रों के मानसिक जगत से जद्दोजहद करने वाले, अपनी शैली में वे अकेले थे, जिन्होंने इतना रुचि लेकर और डूबकर मनुष्य के मानसिक जगत में विचरण किया था । उनकी कहानियों में हर उम्र और वर्ग के पात्र इस तरह की स्थितियों में देखने को मिलते हैं । जैनेंद्र की 'खेल' कहानी बच्चों के आपसी खेल और उनसे जुड़ी हुई मानसिक उथल-पुथल की कहानी है । यह कहानी अपनी कसावट और संवेदना से पाठकों को अभिभूत करती है । इस इकाई में जैनेंद्र की इन्हीं दो कहानियों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है ।

६.३ अपना अपना भाग्य : मूल संवेदना

एक साहित्यकार का मुख्य कार्य अपने समय-संदर्भों को लक्षित करना और अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों का ध्यान उस ओर केंद्रित करना होता है । समय-संदर्भों के अंतर्गत जीवन में बढ़ता हुआ नकारात्मकता का प्रभाव, विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ प्रमुख होती हैं । कहानी 'अपना अपना भाग्य' जैनेंद्र की अत्यंत यथार्थपरक और श्रेष्ठ कहानी है । इस कहानी में नैनीताल की सुरम्य वादियों के बीच जीवन की कठिनाई और भयावहता का चित्रण लेखक के द्वारा किया गया है । यह चित्रण एक तरफ आधुनिक समय में जटिल होते जीवन को अभिव्यक्त करता है, वहीं दूसरी तरफ मानवीय समाज में बढ़ती असंवेदनशीलता की तरफ भी ध्यान आकर्षित करता है । एक दस वर्षीय पहाड़ी लड़का, जो अतिशय गरीबी के वातावरण में जन्मा है, अपने परिवार की गरीबी न देख पाने के कारण गांव से भागकर पच्चीस किलोमीटर दूर नैनीताल शहर में कामकाज की तलाश में आ जाता है । एक होटल में कुछ दिन काम करने के बाद वहां से निकाल दिया जाता है और बस काम की तलाश में इधर-उधर भटकते हुए उसका समय बीतता है । एक काली रात भयंकर शीत में वह कुछ सैलानियों को मिलता है । यह सैलानी उसकी मदद करने का प्रयास करते हैं । पर प्रयास

फलीभूत नहीं होता । कहानी में यही वह स्थल है जहां आधुनिक परिवेश में धीरे-धीरे दूर होते मानवीय सरोकारों से समाज का चरित्र उजागर होता है । यह भयंकर शीत की रात उस लड़के के जीवन की आखिरी रात सिद्ध होती है । उसका मरना कोई बड़ी खबर नहीं था । सैकड़ों-हजारों इन्हीं स्थितियों में रोज मरते हैं । जैनेंद्र ने इस कहानी में अत्यंत यथार्थपरक ढंग से हमारे समाज में छा गई इसी जड़ता और संवेदनहीनता को अभिव्यक्त किया है ।

६.३.१ अपना अपना भाग्य : निर्मम अमानवीयता का बयान:

जैनेंद्र की कहानियों की शक्ति अपने परिवेश को सार्थक ढंग से चित्रित करने में है । उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि, उन्होंने ऐसे समय में जबकि, भारतीय समाज परंपरागत मानसिकता और रूढ़िवादिता में आकंठ डूबा हुआ था, स्त्रियों के संदर्भ में एक नई सोच का सृजन किया । वह भी अपनी तरह का अनोखा यथार्थ था, जिसके संदर्भ में कोई सार्वजनिक ढंग से बात नहीं करना चाहता था परंतु यह जैनेंद्र ही थे, जिन्होंने न केवल वाह्य-पक्ष बल्कि बेहद अंतरंग पक्ष को भी अपनी कहानियों में चित्रित किया । एक स्त्री की आशाएँ-आकांक्षाएँ क्या हो सकती हैं, समाज के विभिन्न संदर्भों पर उसकी सोच और उसकी करनी क्या हो सकती है, वह समाज से क्या चाहती है, वह अपने पारिवारिक संबंधों से क्या अपेक्षा करती है । इन सभी संदर्भों को उन्होंने अत्यंत सूक्ष्म ढंग से अपनी कहानियों में चित्रित किया । इसी भांति विषय-वैविध्यता की दृष्टि से देखें तो समाज के अन्य पक्षों का भी उन्होंने इतनी ही सूक्ष्मता से चित्रण किया है । जैनेंद्र का महत्वपूर्ण साहित्य स्वतंत्रता से पहले के समय से गहरा ताल्लुक रखता है । उसी परिवेश में उसका सृजन हुआ और वह प्रकाशित भी हुआ । स्वतंत्रता के बाद की प्रकाशित उनकी कुछ कहानियां भी उन्हीं संदर्भों और परिवेश को सार्थक ढंग से चित्रित करती हैं । 'अपना अपना भाग्य' ऐसी ही कहानी है । जिसमें उन्होंने हमारे समाज की आडंबर-वृत्ति और खोखली संवेदनशीलता का निर्मम चित्रण किया है । समाज के कटु और निर्मम यथार्थ को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से यह उनकी अत्यंत विशिष्ट और संवेदनशील कहानी है ।

'अपना अपना भाग्य' कहानी नैनीताल के खूबसूरत परिवेश में स्थित बेहद दर्दनाक और कटु सत्य को उजागर करती है । पहाड़ों की अपनी एक अलग विडंबना है । थोड़ा समय बिताने के लिए वे जितने खूबसूरत हैं, वहां रहने वाले बाशिंदों के लिए वहां का जीवन उतना ही त्रासद और शापग्रस्त है । इसका कारण है - वहां की भयंकर गरीबी । पूरी तरह से पर्यटन पर आधारित उनकी अर्थव्यवस्था में एक छोटा तबका ही सुखी और संपन्न है, शेष बड़ी आबादी धनोपार्जन के लिए विकल्पहीन स्थिति में रहती है । रोजगार की अनुपस्थिति के चलते बड़े-बूढ़े और यहां तक कि छोटे बालकों को भी मोह-माया से मुक्त हो, जल्द ही इधर - उधर पलायन कर काम की तलाश में जूझना पड़ता है । ऐसा ही एक दस वर्षीय बालक इस कहानी में उपस्थित होता है । पहाड़ों की भीषण और कड़ाके की ठंड में जर्जर वस्त्र पहने वह दधीचि-हड्डी से युक्त, रोजी-रोटी के संघर्ष में लगा है । घर-परिवार की गरीबी न देख पाने के कारण वह घर से भाग आया है । उसके साथ, उससे तीन-चार वर्ष बड़ा एक और साथी भी है, जो इसी नियति का शिकार है । पहाड़ों के परिवेश में नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत जैसे शहर और मैदानी इलाकों के बड़े शहर इन जैसों की रोजी-रोटी का जरिया बनते हैं । वह बालक रोजगार की उम्मीद में नैनीताल आया है ।

जैनेंद्र ने अपनी इस छोटी सी कहानी में इस बच्चे के मार्फत इस जीवन की कई विडंबनाओं को सार्थक तरीके से प्रस्तुत किया है । एक तो किसी तरह से रोजगार पाने की जद्दोजहद, और रोजगार मिला तो वही साफ-सफाई, बर्तन धोना या किसी होटल रेस्टोरेंट में बैरे का काम करना - यही कुछ काम उन्हें मिलते हैं । अशिक्षा के कारण इन्हीं कामों के लायक ही समझे जाते हैं । काम देने वाले लोग, काम देते हुए जैसे उन पर भारी एहसान करते हैं । न तो ढंग की पगार मिलती है और न सम्मानजनक तरीके से भोजन । एक रुपए पगार और झूठे भोजन पर यह बालक भी एक होटल में कुछ समय काम करता है और फिर वहां से भी निकाल दिया जाता है । वह पुन: नियति के हाथों इधर-उधर भटकने को विवश है ।

ऐसे ही बेकार भटकते हुए अनायास कुछ सैलानियों की नजर उस पर पड़ती है । वह उसकी स्थिति को देखकर हतप्रभ हैं । रात एक बजे का वक्त, कड़ाके की ठंड और टप-टप टपकता हुआ कोहरा अर्थात जीवन के प्रति सारी प्रतिकूल स्थितियाँ और ऐसे में भूख से व्याकुल यह लड़का उन्हें सड़क पर घूमता हुआ मिलता है । उसकी दशा का वर्णन करते हुए जैनेंद्र लिखते हैं, "तीन गज दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े-बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है । नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज लटकाए है । पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा है - कहाँ जाना चाहता है ! उसके कदमों में जैसे न कोई अगला है, न पिछला है; न दायाँ है, न बायाँ है ।" जैनेंद्र की यह विशिष्टता है कि वह ऐसी स्थितियों के पीछे छिपे मनोवैज्ञानिक सत्य को उजागर करने में सिद्धहस्त हैं । जिस तरह वे प्रेम और दांपत्य के अलग-अलग संदर्भों पर अपने पात्रों के माध्यम से विशिष्ट मनोदशाओं को प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार समाज की ऐसी विद्रूप स्थितियों के प्रति भी वे इसी शैली में अपना मंतव्य सामने रख देते हैं । सैलानियों के छोटे किंतु अर्थपूर्ण संवादों के सहारे वे समाज की कटु-यथार्थ दशा को प्रस्तुत कर देते हैं । मनुष्य कितना असंवेदनशील हो चुका है, जनमानस में अशक्त और निर्धन लोगों के प्रति किस तरह की मनोवृत्ति विकसित हो चुकी है, वह इन सैलानियों के संवादों से जाना जा सकता है । सैलानियों के पूछने पर वह अपनी स्थिति को बताते हुए कहता है, "मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं, सो भाग आया । वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं । बाप भूखा रहता था और मारता था । माँ भूखी रहती थी और रोती थी । सो भाग आया । एक साथी और था । उसी गांव का था - मुझसे बड़ा । दोनों साथ यहाँ आए । वह अब नहीं है ।" यह पूछने पर कि वह साथी अब कहाँ गया, बड़ी सहजता से वह कह देता है, "मर गया ।" उसका यह संवाद बेहद मार्मिक है । मृत्यु जैसे उसके लिए बेहद करीब और जाना हुआ सच है, जैसे उसके लिए बेहद आम बात है । उस जैसे बच्चों की यह नियति जैसे उसे पता है । 'उसके साथ आया लड़का किसी साहब के पीटने पर मर गया ।' यह दुर्घटना कोई बड़ी दुर्घटना नहीं है । उसका जीवन किसी के लिए कोई मायने नहीं रखता है या कह लें इन जैसों का जीवन पूरे समाज के लिए कोई मायने नहीं रखता, मरे या जिए या जो भी । उस छोटे अबोध मन की यह दशा हमारे समाज की बड़ी हार है ।

सैलानी उसे अपने साथ होटल लेकर आए, इस उम्मीद में कि शायद उनके साथ के अन्य सम्पन्न सैलानियों में से कोई उसे काम पर रख ले । पर वहां यह जवाब था कि, "अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं । बच्चे - बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं - उठा लाए कहां से - लो जी, यह नौकर लो ।" रात के उस पहर काम दिलाने की जो उम्मीद थी, वह जल्द ही हताशा में बदल गयी। मदद करना चाहते थे, परंतु उनकी मदद और उनकी

संवेदनशीलता का यथार्थ आगे देखने को मिलता है, जब दोनों सैलानियों में से एक अपनी जेब में हाथ डालता है और चंद सिक्के उसे देना चाहता है । पर दुर्भाग्य से उसके पास छुट्टे पैसे नहीं हैं । दस-दस के नोट हैं। दूसरा मित्र भी देखता है और उसकी जेब में भी नोट ही थे और इस आग्रह पर कि दस का नोट ही दे दो, मित्र का उत्तर था, "अरे यार, बजट बिगड़ जाएगा । हृदय में जितनी दया है, पास उतने पैसे तो नहीं ।" तब दूसरा मित्र कहता है, "तो जाने दो; यह दया ही इस जमाने में बहुत है ।" और अंततः वह बच्चा इस आश्वासन पर कि आज तो कुछ नहीं हो सकता पर कल मिलना, कुछ-न-कुछ काम का बंदोबस्त हो जाएगा । परंतु यह रात उस बच्चे के जीवन की अंतिम रात साबित होती है । भयानक शीत में वह खुले में कहीं सोने का जतन करता है और उसका यह सोना हमेशा के लिए सो जाना सिद्ध होता है । समाज के बड़े, संपन्न और संवेदनशील लोगों के बीच वह न तो रोजगार पा सका और न ही एक वक्त का भोजन । अगले दिन वह बच्चा इन सैलानियों को बताई गई जगह पर नहीं मिलता और वे भी अपनी वापसी की तैयारियों में मशरूफ हो जाते हैं । पर उन्हें एक खबर मिलती है, "पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया ।........ पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गयी थी । मानों दुनिया की बे हयाई ढकने के लिए प्रकृति ने सबके लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया था ।.....सब सुना और सोचा - अपना-अपना भाग्य !" और इस तरह यह संवेदनशील कहानी समाप्त होती है । पर समाप्त होते-होते यह कहानी पाठक के मन-मस्तिष्क को झकझोर देती है और तमाम सवाल छोड़ देती है ।

इस कहानी की मुख्य संवेदना हमारे समाज में आ चुकी इसी जड़ता को प्रकट करने में है । वास्तव में आधुनिक समय में जैसे-जैसे जीवन जटिल होता गया है, वैसे-वैसे मानवीयता और संवेदनशीलता घटती गयी है । आधुनिक सभ्यता ने सोचने, समझने और जीवन जीने के जिस तरीके को विकसित किया है, उसके चलते समाज स्वार्थ भावना से अत्यधिक परिचालित होने लगा है । और इसी का परिणाम इस तरह की असंवेदनशीलता के रूप में देखने को मिलता है । हिंदी कहानी के विकासक्रम को देखा जाए तो स्वातंत्र्योत्तर युग में इस तरह के यथार्थ को सूक्ष्मरुप से लक्षित कर कहानीकारों ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है । बेहद सामान्य तरीके से घटित होने वाली यह कहानी हमारे समाज की अत्यंत असामान्य स्थिति की ओर संकेत करती है । यह झूठी और खोखली सहानुभूति का माखौल उड़ाती नजर आती है ।

जैनेंद्र की कहानियां इस संदर्भ में थोड़ी विशिष्ट हो जाती हैं कि एक मुख्य संवेदना के साथ-साथ जैनेंद्र परिवेशगत अन्य बातों को भी उजागर करते हुए कहानी में आगे बढ़ते हैं । यह उनकी शैली की विशिष्टता है । यह विशेषता कभी परिवेशगत राजनीति को उभारती है और कभी सामाजिक यथार्थ से जुड़ी अन्य विद्रूपताओं को । जैनेंद्र का साहित्यिक संस्कार स्वातंत्र्योत्तर युग के पहले विकसित हो चुका था, पक चुका था, अतः वह प्रभाव अधिक संवेदनशील ढंग से उनके साहित्य में देखने को मिलता है । इस कहानी में भी उन्होंने तत्कालीन परिवेशगत कई विडंबनाओं को चित्रित किया है । ब्रिटिशकालीन भारत में भारतीयों की स्थिति दोयम दर्जे की थी । उन्हें व्यावहारिक रूप से बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं था । इस अंतर को इस कहानी में उन्होंने बेहतर तरीके से प्रकट किया है । हिंदुस्तानी और अंग्रेज पुरुषों के संदर्भ में तंज करते हुए वे लिखते हैं, "अधिकार-गर्व में तने अंग्रेज उसमें

थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गए हैं ।" परिवेश वर्णन के इस क्रम में उन्होंने स्थानीय लोगों की वास्तविक स्थिति को बड़ी सहजता से स्पष्ट कर दिया है । हजारों वर्षों से जो लोग उस धरा पर रहते आए थे, जुल्म और जोर के बल पर उनकी स्थिति पशुओं से भी बदतर हो गयी ।

इसी भांति स्त्रियों और बच्चों के संदर्भ में भी वे यथार्थ को स्पष्ट करते हैं । अंग्रेजी युवतियों और भारतीय नारियों में अंतर को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं, "अंग्रेज रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं । उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हंसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ-ही-साथ जरा जी होते ही, किसी हिंदुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं ।...... उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मियाँ, सड़क के बिल्कुल किनारे-किनारे, दामन बचाती और संभालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आंखें गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं।" इसी भांति बच्चों के संदर्भ में वे कहते हैं, "भागते, खेलते, हंसते, शरारत करते, लाल-लाल अंग्रेज बच्चे थे और पीली-पीली आंखें फाड़े पिता की उंगली पकड़कर चलते हुए अपने हिंदुस्तानी नौनिहाल भी थे।" इस परिवेश वर्णन में बड़े सूक्ष्म ढंग से उन्होंने अंग्रेज और भारतीय जीवन-शैली को प्रसंगवश उभारा है। भारतीयों की आर्थिक स्थिति, अंग्रेजों की विद्वेषपूर्ण आर्थिक नीतियों के कारण गिरती ही जा रही थी। खान-पान तथा पहनने-ओढ़ने आदि के स्तरों पर भी वे अभाव झेलने को विवश थे। भारतीयों का सबसे बड़ा वर्ग उस समय कृषि-कार्यों में संलग्न था। परंतु कृषि के क्षेत्र में इतनी तरह की जटिलताएँ थीं, इतनी तरह के कर थे, कि वे कभी अपने जीवन को संपन्न स्थिति में नहीं पहुंचा सकते थे ।

तत्कालीन भारत में भारतीयों का एक वर्ग ऐसा था, जो अंग्रेजियत के सामने नतमस्तक था । ज्यादा-से-ज्यादा अंग्रेजी तौर-तरीकों को अपनाकर वह अन्य भारतीयों से अपने को विशिष्ट बनाना चाहता था । इसी वर्ग को साधकर अंग्रेजों ने भारत को अपने पंजे में दबोचे रखा था । इस वर्ग के ज्यादातर लोग कुलीन वर्ग से थे । जो जमीदारों साहूकारों आदि की श्रेणी से आते थे । ये पूंजीपति थे और अपने पूंजीगत हितों को सर्वोपरिता देते थे । इन्हें देश की अन्य स्थितियों से बहुत ज्यादा लेना-देना नहीं था । राजनीतिक गतिविधियों में भी यह केवल और केवल अपने स्वार्थहित कामना के कारण ही जुड़े हुए थे । इनकी लालसा थी कि यह अंग्रेज साहबों के निकटतम बने रहें । ऐसा करके वे अपने लिए सम्मानित दर्जा स्वत: ही बना लेते थे। भारतीयों में कुछ विशिष्ट हो जाते थे। इन्हीं लोगों को ध्यान में रखकर जैनेंद्र लिखते हैं, "इनके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरचकर बहा देने की इच्छा करने वाले अंग्रेजी-दाँ पुरुषोत्तम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अंग्रेज को देखकर आंखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे - मानो भारत-भूमि को इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।"

इस तरह यह कहानी एक तरफ तो हमारे समाज की निर्मम सच्चाई को बयान करती है, वहीं दूसरी तरफ प्रसंगवश परिवेशगत वर्णनों से उस समय के रहन-सहन और परिस्थितियों का भी अंदाजा सहज ही हो जाता है। जैनेंद्र की यह कहानी उनकी चंद श्रेष्ठ कहानियों में गिनी

जाती है । यह कहानी अपने गठन में इतनी मार्मिक है कि पाठकों के मन-मस्तिष्क को झकझोर कर रख देती है और एक शर्मिंदगी-सी दिलों में तारी हो जाती है। बदलती दुनिया का बेहद कटु सत्य है कि जैसे-जैसे मनुष्य भौतिकता के नए नए साधनों का विकास कर रहा है, विकास के नए-नए दावों के साथ इस दुनिया को बदलने की बात कर रहा है, वैसे-वैसे वह असंवेदनशील होता जा रहा है। यह समाज अब ज्यादा से ज्यादा सुविधा भोगी हो चला है। इंसानियत भी सुविधा की ही शक्ल में बस जिंदा है।

कलात्मक दृष्टि से भी यह कहानी जैनेंद्र की श्रेष्ठ कहानी है। अपनी ज्यादातर कहानियों में जैनेंद्र स्वयं ही विवरण के द्वारा तमाम जिज्ञासाओं की पूर्ति करते हैं परंतु इस कहानी में मुख्य संवेदना को उन्होंने जिस ढंग से छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से उभारा है, वह निश्चित ही कलात्मक दृष्टि से अत्यंत श्रेष्ठ है। कहानी की मुख्य संवेदना उस दस वर्षीय बच्चे की भयंकर गरीबी, विवशता और जीवन जीने के प्रति जद्दोजहद है। इन सभी स्थितियों को कहानीकार ने दो सैलानियों के संवादों के माध्यम से बेहद कुशलता और मार्मिक अंदाज में प्रकट किया है । यह कहानी अपने अंत को जिस ढंग से प्राप्त करती है, वह भी अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है । कहानी के अंत में वह लड़का अनुपस्थित है, परंतु खबर जिस प्रतीकात्मक ढंग से उस बालक के हृदयद्रावक अंत को सूचित करती है, उससे हमारे समाज की अ-संवेदनशीलता स्वत: प्रकट हो जाती है । इस कहानी का उद्देश्य भी यही है, जिसे जैनेंद्र एकदम सटीक ढंग से पाठकों तक प्रेषित कर सके हैं । कहानी के लघु-संवाद, मार्मिकता और प्रवाह में तीव्रता इस कहानी की शक्ति हैं।

६.४ खेल : मूल संवेदना

कथाकार जैनेंद्र प्रेम और दांपत्य जैसे विषयों को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से हिंदी के सर्वाधिक समर्थ कथाकारों में से एक माने जाते हैं । उनकी विभिन्न कहानियों और कई उपन्यासों में चित्रित स्त्री-पात्र, स्त्री-मनोजगत की सार्थक अभिव्यक्ति करते दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से जैनेंद्र ने काल का अतिक्रमण भी किया है । इन कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्त उनके विचार अपने समय से आगे के विचार माने जाते हैं। और इन्हें प्रकट करते हुए जैनेंद्र ने अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता का ईमानदारी से अनुसरण किया है। अपने विचारों को प्रकट करते हुए उन्होंने खुद को समय के दबावों से अलग रखा है । उनकी यह दुस्साहसी प्रवृत्ति उनके समग्र साहित्य में दिखाई देती है। अपनी इस सिद्धि के अतिरिक्त जैनेंद्र को बालमन का कुशल चितेरा भी माना जा सकता है। उनकी कहानी 'खेल' इस दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस कहानी में जैनेंद्र ने सुरबाला और मनोहर - इन दो पात्रों के माध्यम से बाल मनोजगत की विभिन्न दशाओं को कुशलता से अभिव्यक्त किया है। कहानी पढ़ते हुए पाठक सुरबाला के विचार और चिंतन के अनुरूप अपने बचपन को जैसे जीने लगता है। बचपन की छोटी-छोटी शरारतें, चिंताएँ, खुशियाँ और दुख - यह सभी एक साथ इस छोटी कहानी में चित्रित हैं। कहानी की संवेदना अत्यंत घनीभूत है और इस संवेदना को जैनेंद्र ने एक कुशल शिल्पी की भांति आकार दिया है।

६.४.१ खेल : बचपन को साकार करती कहानी:

कहानी 'खेल' जैनेंद्र की आरंभिक कहानियों में से एक है। किसी भी साहित्यकार के विकास में उस समय की परिस्थितियों और अन्य साहित्यिक प्रभावों का बड़ा योगदान होता है। जैनेंद्र में भी ऐसे प्रभाव काफी मिले-जुले रूप में देखने को मिलते हैं। इस कहानी का आरंभ कुछ प्रसाद शैली में करते हुए जैनेन्द्र आरम्भ करते हैं, "मुनमुन संध्या स्मिथ प्रकाश से हंस रही थी उस समय गंगा के निर्जन बालू का स्थल पर एक बालक और एक बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल गंगा तट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना उनसे खिलवाड़ कर रहे थे प्रकृति इन निर्दोष परमात्मा खंडों को निस्तब्ध और निर्णय निहार रहे थे बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटा छठ उछाल रहा था पानी मानो चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विमल हो उछल रहा था।" इस तरह तत्सम प्रधान भाषा और संवाद की शैली प्रसाद भी अपनी कहानियों के आरंभ में अपनाते हैं और यहीं से वे कहानी के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं

पात्रों के रूप में इस कहानी में छः-सात वर्ष की एक बालिका है, जिसे सुर्री, सुर्रो, सुरबाला आदि नामों से संबोधित किया गया है। और दूसरा मनोहर, जो सुरबाला से कोई दो साल बड़ा है। यही दोनों मुख्य पात्र हैं। छोटी सी कहानी में इन दो पात्रों के माध्यम से जैनेंद्र ने बच्चों की चंचल मनोवृति का बेहतरीन चित्रण किया है। गंगा के तट पर दोनों अकेले खेल रहे हैं। मनोहर वहीं रहते हुए नहीं होता है। सुरबाला नदी किनारे बालू में अपने ही खेल में मगन है। और मनोहर दूसरी तरफ लहरों के साथ अपने खेल में मगन है। दोनों बालक एक दूसरे के साथ मिलकर खेलते भी हैं, और बालहठ के अनुसार लड़ते-झगड़ते भी हैं। परंतु दोनों को एक-दूसरे से बेहद स्नेह है। जैनेंद्र ने इस कहानी में बालमन की इन्हीं जटिलताओं को सहज तरीके से उभारा है।

सुरबाला नदी किनारे रेत में बैठी रेत से आकृति बना रही है और आकृति के रूप में वह भाड़ को आकार दे रही है। भाड़ का निर्माण करते-करते उसके मन में कई तरह के सवाल, कई तरह के विचार आते-जाते हैं और वह अकेले इन्हीं विचारों में डूबी हुई भाड़ भी बनाती जा रही है और खुद से बातें भी करती जा रही है। उसके विचारों के केंद्र में मनोहर है। बालमन पूरी सरलता और सहजता के साथ इस कहानी में चित्रित है। भाड़ बनाते-बनाते वह भाड़ से ही बातें करते हुए कहती है, "बनाते बनाते भाड़ से बालिका बोली, 'देख ठीक नहीं बना, तो मैं तुझे फोड़ दूंगी।' फिर बड़े प्यार से थपका-थपकाकर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी - इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊंगी। वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर ?... नहीं वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जाएगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूंगी।" भाड़ बन रहा है और अंतर्मन में मनोहर भी आ-जा रहा है। मनोहर के लिए तमाम चिंताएं भी हो रही हैं। उसका राग-द्वेष भी याद किया जा रहा है। इस समस्त कार्य-व्यापार के माध्यम से जैनेंद्र बालमन का अत्यंत सार्थक चित्रण करते हैं। सुरबाला, मनोहर के बारे में सोचती है, "बालिका सोच रही थी - मनोहर कैसा अच्छा है, पर वह दंगई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है। अबके दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा, तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेंगे।"

मनोहर की उम्र इतनी नहीं है कि वह शैतानियां छोड़ चुका हो। सुरबाला उसकी चंचल शरारतों से तंग है। वह उसका साथ भी चाहती है और उससे परेशान भी दिखाई देती है। पर मनोहर चाहे जितना दंगई हो, जितना शरारती हो, उसकी सारी कामनाओं में और निर्माण में उसका प्रिय साथी भी है। भाड़ बनता जा रहा है और उसके ऊपर कुटी भी बन रही है। भाड़ का धुआं कैसे निकले, इसके लिए चिमनी भी बन रही है। और फिर यह चिंता भी होती है कि नीचे भाड़ तो बहुत गर्म होगा और मैं तो रह लूंगी, पर मनोहर कैसे रहेगा, "भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे ? मैं तो रह जाऊंगी। पर मनोहर तो जलेगा। फिर सोचा -उससे मैं कह दूंगी भई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठने को आया ही - तो ? मैं कहूंगी - भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ।" मनोहर दंगई है, शरारती है, परंतु सुरबाला के हृदय में उसके लिए मातृ-तुल्य चिंता भी है। वह अचानक मनोहर को लेकर बहुत चिंतित हो जाती है। उसे लगता है, कि मनोहर बिना उसके नहीं रहेगा, वह जिद करेगा कि वह भी भाड़ में रहेगा और भाड़ बहुत गरम होगा। तब भला फिर कैसे होगा, तब वह मनोहर को कैसे रोकेगी, "बेचारा तपेगा। भला कुछ ठीक है ! ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूंगी, और कहूंगी - अरे जल जाएगा मूरख ? यह सोचने पर उसे बड़ा मजा-सा आया, पर उसका मुंह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हस्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भांति प्रत्यक्ष हो गया।"

इन्हीं विचारक्रमों में चलते-चलते अंततः सुरबाला की सबसे सुंदर कृति तैयार भी हो जाती है। बच्चे अपनी बनायी किसी अनगढ़ चीज पर भी बेहद अभिभूत रहते हैं। उनकी सुंदरता में मगन रहते हैं। वे अपनी सर्जना से संतुष्ट होते हैं। उनमें निर्माण करने का एक संतोषी भाव पैदा होता है। ऐसा ही भाव सुरबाला के मन में भी पैदा होता है, जब उसका भाड़ बनकर तैयार हो जाता है, "ब्रह्मांड का सबसे संपूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुंदर वस्तु तैयार हो गयी।..... परमात्मा कहाँ बिराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताए - इस भाड़ के जादू में।" सुरबाला के लिए यह पूरे ब्रह्मांड की सबसे सुंदर वस्तु है और उसके बनाए इस जादुई घर में स्वयं परमात्मा विराजते हैं। और इसके बाद अपनी बनाई इस कलाकृति को अपने सबसे अच्छे सखा, मनोहर को दिखाने की जिज्ञासा और उत्साह। वह मनोहर को खुशीखुशी- बुलाती है। बच्चों में एक स्वाभाविक वृत्ति होती है, वह सराहना चाहते हैं। परंतु मनोहर तो शरारती है, दंगई है। भाड़ देखने का आमंत्रण पाते ही वह उत्साहपूर्वक आता है परंतु अपनी प्रकृति से विवश है और शरारत करते हुए वह अपने पैरों के एक ही वार से ब्रह्मांड की सबसे सुंदर कलाकृति को नष्ट कर देता है।

ऐसे में सुरबाला के हाल का वर्णन करते हुए कहानीकार कहता है, "सुर्रो रानी मूक खड़ी थीं। उनके मुंह पर जहां अभी एक विशुद्ध रस था, वहां अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उन्हीं के हाथ का बनाया हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थीं। हा, हन्त ! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला ! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गयी।" सुरबाला, जिसके विचारों में डूबी हुई इस सुंदर कलाकृति का निर्माण कर रही थी और निर्माण करने के बाद जिसे वह सबसे उत्सुकता के साथ दिखाना चाहती थी, उसी ने उसके इस सुंदर महल को नष्ट कर दिया।

मनोहर ने भाड़ तोड़ तो दिया परंतु उसे एहसास भी हो गया कि उसने सुरबाला का जी कितना दुखाया है। वह अपराध बोध और पश्चाताप से भर जाता है। वह चाहता है कि उसकी सुर्रो उसको कुछ कहे, वह अपने अपराध का दंड पाना चाहता है और कहता है, "सुर्री, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती ! उसे एक थप्पड़ लगा - वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।" पर सुरबाला तो रूठ गई है और खूब मनाने के बाद वह अपनी बाल सुलभ चेष्टा से मनोहर को वैसा ही भाड़ बनाने का आदेश देती है, तब मनोहर खुशी-खुशी भाड़ बनाने में जुट जाता है। वह अपने पश्चाताप को जल्दी से जल्दी निभा लेना चाहता है और जब मनोहर द्वारा भाड़ बनकर तैयार हो जाता है, तो सुरबाला भी बाल-चेष्टावश उस भाड़ को नष्ट कर देती है, "गंगाजल से कर-पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुर्रो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया।" इस तरह सुरबाला मनोहर से अपना बदला ले लेती है।

बालमन अपनी छोटी-छोटी खुशियों से बहुत खुश हो जाता है और छोटे-छोटे दुखों से बहुत दुखी भी हो जाता है। बच्चे निर्मल हृदय होते हैं। अपनी भावनाओं को आवरण में ढककर, आवृतकर प्रकट नहीं करते। सहज ढंग से अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देते हैं। सुरबाला के चरित्र के माध्यम से जैनेंद्र ने बालमन की इन्हीं प्रवृत्तियों का अत्यंत सुंदर चित्रण किया है। वात्सल्य की इस सरल और मोहक अनुभूति को जैसे सारी प्रकृति भी देख रही है और आनंदित हो रही है। जैसे इस समस्त कार्य व्यापार को देखकर प्रकृति भी वात्सल्यपूर्ण भाव से आवृत हो गई थी, "उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु-हास्यरव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल-लाल मुंह से गुलाबी-गुलाबी हँसी हँस रहे थे। गंगा मानो जान-बूझकर किलकारियाँ मार रही थी। और..... और वे लंबे ऊँचे-ऊँचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भाँति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मानो मन-ही-मन गंभीर तत्वालोचन कर, हँसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बक्शना चाह रहे थे।" और इस तरह यह कहानी समाप्त हो जाती है।

'खेल' कहानी भले ही जैनेंद्र की आरंभिक कहानी है परंतु जैनेंद्र ने जिस कुशलता से सुरबाला और मनोहर के मार्फत बाल-मन की विभिन्न दशाओं को सार्थक ढंग से चित्रित किया है, उससे उनकी कुशलता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। सुरबाला और मनोहर का पहले तो अपने में खोए रहकर अपने-अपने खेलों में व्यस्त होना, फिर सुरबाला द्वारा भाड़ बनाते हुए विभिन्न तरह की बातें सोचना - ऐसी बातें हैं जो हमें बचकानी लग सकती हैं। परंतु यही बचपन की निर्मलता है कि जिन्हें हम बचकाना समझते हैं, वही उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है। उसी सरलता में बचपन की सारी खुशियां समाई होती हैं। सुरबाला का मन एक ममत्व से भरा हुआ स्त्री-मन है। उसमें निर्माण का उत्साह है। भाड़ बनाते हुए वह बेहद खुश है और बनाते-बनाते तमाम तरह की चिंताओं का आना-जाना, यह सब बचपन में सहज रूप से हम सबने भी किया और समझा है। अपने सखा मनोहर के प्रति उसकी चिंताएँ, इन सभी का चित्रण कहानीकार ने अत्यंत कुशलता से कहानी में किया है।

बालक अपनी क्षणिक चेष्टाओं में ही खुश होते हैं, दुखी होते हैं और फिर खुश हो जाते हैं। यही उनका बचपन है। घंटों की मशक्कत के बाद सुरबाला भाड़ बनाती है और कुछ ही क्षण में शरारती मनोहर घंटों की मेहनत को धूल-धुसरित कर देता है। सुरबाला गुस्सा हो जाती

है परंतु यह गुस्सा भी क्षणिक है। मनोहर पछतावे में उसे मनाने की कोशिश करता है और जब सुरबाला उसे वैसा ही भाड़ बनाने के लिए कहती है, तो वह खुशी-खुशी इस काम में जुट जाता है। पूरी लगन से वह भाड़ को पुनः तैयार करता है और जब सुरबाला को देखने के लिए कहता है, तो सुरबाला जैसे-को-तैसा का नियम अपनाते हुए मनोहर के बनाए भाड़ को ध्वस्त कर देती है और खुशी से नाचने लगती है। जैसा मनोहर ने किया, वैसा ही सुरबाला ने मनोहर के साथ किया। इसी में उसकी तृप्ति है। इस समूचे कार्य-व्यापार का जैनेंद्र ने जिस तरह सचित्र वर्णन किया है, वह पाठकों को अभिभूत कर लेता है। सुरबाला और मनोहर के रूप में पाठकों के हृदय में भी कुछ क्षण के लिए बचपन जीवित हो जाता है।

६.५ सारांश

जैनेंद्र हिंदी कहानी के इतिहास में अनूठे कलाकार हैं। वे अपनी धारा में अप्रतिम हैं। उनके जैसे सिर्फ वही हैं, और कोई नहीं। कहानी कहने की उनकी शैली भी अनोखी है। वे कहानी लिखते नहीं, बल्कि कहते हैं। कहानी कहते हुए जैनेंद्र के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण बात होती है कि संवेदना कितनी सफलता से पाठकों तक अंतरित हुई है। शिल्प को लेकर वे उतने जागरूक या चिंतित नहीं होते। इस इकाई में जैनेंद्र की दो कहानियों 'अपना अपना भाग्य' और 'खेल' का विश्लेषण किया गया है। दोनों ही कहानियाँ अपनी विशिष्ट संवेदना की दृष्टि से अत्यंत अनोखी कहानियाँ हैं। 'अपना अपना भाग्य' जहां आधुनिक जीवन के नग्न यथार्थ पर आधारित है, वहीं 'खेल' कहानी बालकों के खेलकूद का वर्णन करते हुए उनके मनोजगत को जानने-पहचानने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानी है। दोनों ही कहानियाँ संवेदना प्रधान कहानियाँ हैं। दोनों ही कहानियाँ आकार की दृष्टि से छोटी कहानियाँ हैं। क्योंकि कहानी विधा का कलेवर किसी एक भाव या घटना को केंद्र में रखकर ही आगे बढ़ता है, इन कहानियों में भी ऐसा ही देखने को मिलता है। अपनी कारीगरी के संदर्भ में जैनेंद्र कहते हैं, "कहानी मेरे लिए शिल्प नहीं है, वह संवेदन और संवेद है। शिल्प अनावश्यक नहीं। कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज नहीं समझा जा सकता, लेकिन उससे किनारे बनते हैं, नदी का पानी नहीं बनता।"

जैनेंद्र के उपरोक्त कथन से सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि कहानी के गढ़न और गठन के बजाय उनका ध्यान संवेदना के अंतरण की तरफ ज्यादा रहता है। कहानी में प्रश्न उपस्थित करना और फिर लगातार उस संवेदना को विकसित करते-करते अंत की तरफ ले जाना, यह उनकी कहने की प्रक्रिया रही है। 'अपना अपना भाग्य' और 'खेल' दोनों ही कहानियों में इस स्थिति को देखा जा सकता है। 'अपना अपना भाग्य' का सबसे मार्मिक क्षण वह है, जिसमें एक आम खबर के रूप में शीत से उस लड़के की हुई मृत्यु के बारे में कहानीकार सूचित करता है। और 'खेल' का सबसे महत्वपूर्ण क्षण वह है, जिसमें सुरबाला मनोहर के द्वारा बनाए गए भाड़ को तोड़कर नाचते हुए हँसती है। दोनों ही कहानियाँ अपने-अपने मंतव्यों को भली-भांति प्रेषित करने में सफल रही हैं। दोनों ही कहानियों को जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में सम्मिलित किया जाता है।

६.६ उदाहरण-व्याख्या

व्याख्या: अंश 1. मोटर में सवार होते ही थे कि समाचार मिला - पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया। मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उमर और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली ! आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था। पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बर्फ की हल्की - सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया था !

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की यथार्थपरक कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत है।

प्रसंग: इस कहानी में एक दस वर्षीय गरीब पहाड़ी बालक की भूख और बेरोजगारी के चलते भयंकर शीत में मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु का कारण पूरे मानवीय समाज की उपेक्षा और संवेदनहीनता है। इन्हीं की ओर इस उद्धरण में संकेत किया गया है।

व्याख्या: कहानीकार के द्वारा समाज के नग्न यथार्थ पर इस कहानी की रचना की गई है। आधुनिक समय में हमारे समाज में खोखले चरित्र वाले लोगों की कोई कमी नहीं है, जो सहानुभूति का दिखावा तो बहुत करते हैं, परंतु जरूरतमंद और बेसहारा लोगों के लिए सार्थक ढंग से कुछ भी नहीं करते हैं। दिखावे की यह प्रवृत्ति आम जनता और राजनीतिज्ञों आदि सभी पर समान रूप से लागू होती है। 'अपना-अपना भाग्य' कहानी में गरीबी से लाचार दस वर्षीय पहाड़ी बच्चा, पढ़ने-लिखने और खेलने की उम्र में परिवार की गरीबी के चलते अपनी जिम्मेदारी महसूस करता है और अपने गांव से पच्चीस किलोमीटर दूर नैनीताल शहर में कामकाज की तलाश में आ जाता है। जहां काम तो उसे क्या मिलता है, यह अलग बात है, परंतु घोर अमानवीयता और संवेदनहीनता से उसका परिचय होता है। सैलानियों से भरे उस शहर में कोई भी ऐसा नहीं होता जो सचमुच उसकी मदद करना चाहे। कुछ लोग जो उसकी स्थिति को देखते हुए उसकी मदद करने का प्रयास करते हैं, वह भी सचमुच मदद नहीं करते बल्कि दिखावा करते हैं। मृत्यु की रात वह जिन सैलानियों से मिलता है, वे उसकी मदद से कहीं ज्यादा दस रुपये के नोट का मूल्य समझते हैं। भयंकर शीत में भूख से बेहाल उस बालक को मदद के रूप में केवल 'कल मिलने का आश्वासन' मिलता है और वह कल उस बालक के जीवन में कभी नहीं आता। इस संवेदनहीन समाज की संवेदनहीनता के चलते अंततः भयंकर शीत में सड़क पर ही उसकी मृत्यु हो जाती है। कहानीकार ने समाज की इस खोखली सहानुभूति पर तीखा व्यंग किया है।

विशेष: १.समाज की संवेदनहीनता का चित्रण किया गया है।

२.खोखले चरित्र के मनुष्यों पर तंज किया गया है।

व्याख्या: अंश 2. बालिका को अचानक ध्यान आया - भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे ? मैं तो रह जाऊंगी। पर मनोहर तो जलेगा। फिर सोचा - उससे मैं कह दूंगी भई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठने को आया ही - तो ? मैं कहूंगी - भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ। पर वह मेरे पास आने की जिद करेगा क्या ? जरूर करेगा, वह बड़ा हठी है। पर मैं उसे आने नहीं दूंगी।

बेचारा तपेगा। भला कुछ ठीक है ! ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूंगी, और कहूंगी - अरे जल जाएगा मूरख ?

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण बाल मनोविज्ञान पर आधारित जैनेंद्र की कहानी 'खेल' से उद्धृत है।

प्रसंग: प्रस्तुत उद्धरण में कहानीकार ने कहानी के प्रमुख पात्र सुरबाला की खेल के दौरान की विविध मनोदशाओं को प्रस्तुत किया है। एक बालक की अपनी समस्याएँ क्या होती हैं और किस तरह से वह उनका निराकरण विचारता है, यह सारी स्थितियाँ अत्यंत मोहक ढंग से कहानीकार ने यहां पर वर्णित की हैं।

व्याख्या: 'खेल' कहानी मनोहर और सुरबाला नाम के दो बालकों पर आधारित है। सुरबाला जिसकी उम्र छः या सात बरस होगी और मनोहर जो उससे कोई दो वर्ष बड़ा है। दोनों बालक गंगा तट के किनारे निर्जन में खेल रहे हैं। मनोहर नदी की धारों में व्यस्त है, वहीं दूसरी तरफ, गंगा किनारे रेत में बैठी सुरबाला रेत से अपने भाड़ का निर्माण कर रही है, जिसके ऊपर वह कुटी भी बनाती है। जिसमें वह रहेगी। कुटी बनाते-बनाते उसे अपने सखा मनोहर का ख्याल आता है कि जब वह कुटी में रहेगी तो मनोहर भी तो कुटी में रहने की जिद करेगा। और यह विचार उसके मन में आते ही वह दुविधा में तरह-तरह के विकल्प खोजने लगती है। कभी उसे लगता है कि वह मनोहर को आने देगी और कभी उसे लगता है कि भाड़ बहुत गर्म होता है, मनोहर कैसे उसमें रहेगा। वह जलेगा। कभी वह मनोहर पर अपना क्रोध व्यक्त करती है और कभी मनोहर पर उसे ममत्व आता है। इस तरह के आते-जाते भावों से सुरबाला के मनोहर के प्रति स्नेह का पता चलता है। सुरबाला खुद से तर्क-वितर्क कर रही है। मनोहर अपने खेल में मग्न है और वह भाड़ बनाते हुए अपने और मनोहर के बीच के संवाद की भी खुद ही कल्पना करती जा रही है। सुरबाला कि यह दशा वात्सल्य की अद्भुत सृष्टि करती है और जैनेंद्र ने इसके माध्यम से बालकों के मन में चलने वाली दुविधाओं और बालसुलभ चिंताओं आदि को सार्थक तरीके से प्रस्तुत किया है।

विशेष: १. उद्धरण में जैनेंद्र ने बच्चों के मन का सार्थक चित्रण किया है।

२. बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से यह जैनेंद्र की उल्लेखनीय कहानी है।

६.७ वैकल्पिक प्रश्न

१. सुरबाला के बनाए भाड़ को किसने तोड़ दिया ?

(क) राकेश (ख) सुरेश

(ग) रमेश (घ) मनोहर

२. सुरबाला किसके जल जाने की कल्पना से चिंतित है ?

(क) सुरेश (ख) राकेश

(ग) रमेश (घ) मनोहर

३. सुरबाला किसे अपना टूटा हुआ भाड़ पुनः बनाने के लिए कहती है ?

(क) रमेश (ख) सुरेश

(ग) राकेश (घ) मनोहर

४. 'अपना अपना भाग्य' कहानी में किस शहर का वर्णन है ?

(क) अल्मोड़ा (ख) रानीखेत

(ग) श्रीनगर (घ) नैनीताल

५. रात्रि में भयंकर शीत में घूमते हुए सैलानियों को कौन मिलता है ?

(क) शेर (ख) बुढ़िया

(ग) वृद्ध (घ) बालक

६. 'अपना अपना भाग्य' कहानी में बालक की उम्र कितनी है ?

(क) सात (ख) आठ

(ग) नौ (घ) दस वर्ष

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'अपना अपना भाग्य' कहानी में चित्रित संवेदनहीनता

२. 'अपना अपना भाग्य' कहानी का उद्देश्य

३. 'खेल' कहानी में सुरबाला का व्यक्तित्व

४. 'खेल' कहानी का उद्देश्य

६.९ बोध प्रश्न

१. 'अपना अपना भाग्य' कहानी में चित्रित यथार्थ का वर्णन कीजिए ?

२. 'अपना अपना भाग्य' कहानी के मंतव्य को विस्तार से व्यक्ति कीजिए ?

३. 'खेल' कहानी बाल मनोविज्ञान की श्रेष्ठ कहानी है।' कथन का विश्लेषण कीजिए ?

४. कहानी 'खेल' का सारांश अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए ?

*****

७

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
कहानी - एक रात और पत्नी

इकाई की रूपरेखा

७.१ इकाई का उद्देश्य

७.२ प्रस्तावना

७.३ एक रात : मूल संवेदना

  ७.३.१ एक रात विश्लेषण

७.४ पत्नी : मूल संवेदना

  ७.४.१ पत्नी : भारतीय गृहिणी का अंतःसंवाद

७.५ सारांश

७.६ उदाहरण व्याख्या

७.७ वैकल्पिक प्रश्न

७.८ लघुत्तरीय प्रश्न

७.९ बोध प्रश्न

७.१ इकाई का उद्देश्य

जैनेंद्र की कहानियों पर आधारित इस इकाई में 'एक रात' और 'पत्नी' कहानियों का अध्ययन एवं विश्लेषण सम्मिलित है । दोनों ही कहानियाँ जैनेंद्र की महत्वपूर्ण कहानियों में गिनी जाती हैं । जैनेंद्र की कहानियों का मुख्य विषय स्त्रियों के जीवन की विभिन्न विडंबनाएँ हैं। इस दृष्टि से यह दोनों कहानियाँ स्त्री जीवन की अलग-अलग विडंबनाओं को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ हैं। 'एक रात' कहानी कई तरह के प्रश्नों को समेटकर चलने वाली जैनेंद्र की लंबी कहानी है। जैनेंद्र ने जो भी लंबी कहानियाँ लिखी हैं, उनमें यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विवाहेत्तर संबंधों जैसे विषय को लेकर इस कहानी में जैनेंद्र ने सुदर्शना और जयराज के माध्यम से इसके विभिन्न पक्षों पर तर्क-सहित विचार-विमर्श प्रस्तुत किया है। दूसरी तरफ 'पत्नी' कहानी मध्यवर्गीय जीवन की विडंबना को प्रस्तुत करने वाली कहानी है, जिसमें एक स्त्री की आशाएँ-आकांक्षाएँ, उसका सुख-दुख निर्भ्रांत रूप में प्रकट हुआ है। इस इकाई में इन्ही दो कहानियों का विस्तार से अध्ययन सम्मिलित है।

७.२ प्रस्तावना

जैनेंद्र एक दुस्साहसी कथाकार माने जाते रहे हैं। उन्होंने जब कहानी लेखन आरंभ किया, वह समय हिंदी कहानी के इतिहास में प्रेमचंद युग के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद सर्वथा

नवीन चेतना के साथ हिंदी कहानी के क्षेत्र में आए थे और हिंदी कहानी में उन्होंने आमूल परिवर्तन उपस्थित किया था । अपने समय की सामाजिक समस्याओं से लड़ने के लिए उन्होंने कलम को महत्वपूर्ण जरिया बनाया था । और समाज और जीवन के सभी क्षेत्रों से चुन-चुन कर ऐसे विषयों का साक्षात पाठकों को कराया था, जिनसे वे परिचित तो थे, पर भली-भांति जानते नहीं थे । अपनी कहानियों में उन्होंने ऐसे चरित्रों के सचित्र वर्णन उपस्थित कर समाज की वास्तविक दशा से सभी को परिचित कराया । जैनेंद्र जब हिंदी कहानी के क्षेत्र में अवतरित हुए तो ऐसा ही अंतर उन्होंने भी स्थापित किया। जैनेंद्र की रूचि समस्त समस्याओं के साथ-साथ व्यक्ति के मनोजगत को विस्तार देने में थी । उनके लेखन के केंद्र में वैसे तो समाज का हर पक्ष था, परंतु स्त्रियों को लेकर उनके कथा साहित्य में एक विशेष दृष्टिकोण देखने को मिलता है । इस इकाई में 'एक रात' और 'पत्नी' कहानियों का विश्लेषण सम्मिलित है । स्त्री जीवन में जैनेंद्र ने जहाँ सहज रूप से जीवन जीती हुई मध्यवर्गीय स्त्री को केंद्र में रखा है, वहीं एक रात जैसी कहानियों के माध्यम से नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न को भी केंद्र में रखा है । इन दोनों कहानियों का विशद विवेचन आगे सम्मिलित है ।

७.३ कहानी एक रात : मूल संवेदना

'एक रात' कहानी प्रेम और दांपत्य के द्वन्द्व और संघर्ष पर आधारित जैनेंद्र की एक लंबी कहानी है । संभवतः जैनेंद्र ने सबसे ज्यादा यदि किसी विषय को अपनी सर्जना में छुआ है, तो वह यही विषय है । सामाजिक और वैयक्तिक रूप से इस प्रश्न को उन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने और एक नई दृष्टि देने का काम किया है । जयराज और सुदर्शना को केंद्र में रखकर लिखी गई इस कहानी में दरअसल वैवाहिक संबंधों को एक नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है । विवाह संस्था के पीछे के स्त्री मनोजगत के सत्य भी केंद्र में हैं । यह कहानी अपने समकालीन परिवेश को भी प्रस्तुत करती है । परंतु जयराज और सुदर्शना का द्वंद्व एवं संघर्ष इसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है । इनके द्वंद्व और संघर्ष को लेकर जैनेंद्र ने कहानी में जिस कार्य-व्यापार का सृजन किया है, वह इस कहानी की मूल संवेदना के रूप में ग्रहण किया जा सकता है ।

७.३.१ कहानी एक रात : विश्लेषण:

कहानी 'एक रात' जैनेंद्र की आरंभिक कहानियों में से एक है । 'एक रात' नाम से उनका एक कहानी संग्रह सन १९३४ में छपा था । इसका अर्थ है कि यह कहानी सन् १९३४ के पूर्व ही लिखी गई थी । अपने विषय को लेकर यह कहानी चमत्कृत करती है क्योंकि जैनेंद्र ने इसमें ऐसे विषय को लिया है, जिस बारे में बात करना भी उस वक़्त ठीक नहीं समझा जाता था । इस तरह के विषयों को जैनेंद्र लगातार अपने कथा साहित्य में उठाते रहे हैं, जो एक स्त्री और पुरुष के सीमित संबंधों के दायरे को तोड़कर उन्मुक्त ढंग से प्रकट होते हैं । जयराज और सुदर्शना नामक दो पात्रों पर आधारित यह कहानी ऐसे ही विषय को लेकर लिखी गई है, जिसमें जयराज का भीषण द्वंद्व और अंतःसंघर्ष चित्रित हुआ है । स्पष्ट रूप से तो यह कहानी विवाहेत्तर संबंधों को उभारती है, साथ ही उस समय के राजनीतिक परिवेश पर भी आनुषंगिक रूप से विचार-विमर्श करती दिखाई देती है ।

जयराज और सुदर्शन इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। जयराज राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर युवावस्था में ही औपचारिक शिक्षा का मार्ग छोड़कर आंदोलन में सम्मिलित हुआ युवक है। उसकी अवस्था कोई तीस वर्ष के आसपास है और वह पूरी तरह से अपने को पार्टी कार्यक्रम के लिए समर्पित किए हुए है। देशसेवा का जुनून उस पर इस कदर हावी है कि उसने पारिवारिक जीवन भी देशोद्धार हेतु त्याग दिया है। कहानीकार उसके बारे में जानकारी देते हुए लिखता है, "बिना ताले और बिना प्राइवेसी जयराज सबका बनकर अकेला रहता है। अब तक जीवन के पाँच वर्ष जेल में बिता चुका है। खाली रहता ही नहीं। कॉलेज के चौथे वर्ष से पढ़ना छोड़ दिया, तभी सगाई भी तोड़ दी।" चौबीसों घंटे वह अपने इसी कार्य में संलग्न रहता है। क्षेत्र के विभिन्न स्थानों में जा-जाकर भाषण देना, पार्टी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों के संदर्भ में लोगों को सूचित करना, उन्हें जागरूक बनाना - यही उसका मुख्य काम है। कहानी का आरंभ इसी सिलसिले को लेकर शुरू होता है। बिलासपुर से लगभग एक घंटे रेलयात्रा-मार्ग पर स्थित हरीपुर नामक स्थान से एक प्रतिनिधि-मंडल जयराज को अपने यहाँ सभा के लिए आमंत्रित करने आता है। अपनी व्यस्तता के चलते, समय न होने का हवाला देते हुए, जयराज आ सकने में अनिच्छा जाहिर करता है। परंतु अंततः अपने नैतिक दबाव के कारण उसे जाना पड़ता है। इसी प्रतिनिधि-मंडल से संवाद के सिलसिले में कहानीकार जैनेंद्र ने उस समय के राजनीतिक परिवेश को चित्रित करने का अवसर बना लिया। जिस बारे में वे लिखते हैं, "देखिए नेतृत्व के मामले में गांवों को आत्म-निर्भर बनना होगा। नेताओं का भरोसा आप क्यों रखें ? इस तरह सरकार हमें हरा सकती है। चुन-चुनकर कुछ आदमियों को जेल में डाल दिया और राष्ट्र की रीढ़ टूट गयी। नहीं, नहीं, प्रत्येक व्यक्ति कृत-निश्चय हो तभी तो स्वराज्य मिलेगा। नहीं तो अगर स्वराज्य मिला भी, तो जनता का स्वराज्य वह कब हुआ ? हम लोगों का आसरा अब छोड़ दीजिए। मैं आप-सा ही आदमी हूँ।"

उस दौर में भारतीय समाज एक शहरी समाज के रूप से ज्यादा एक ग्रामीण समाज के रूप में जाना जाता था। ब्रिटिश व्यवस्था से ग्रामीण क्षेत्र का परिचय सिर्फ शोषण तक ही था। अन्य सामाजिक कार्यों को लेकर सरकार उतनी जागरूक नहीं थी। ग्रामीण क्षेत्र नई शिक्षा व्यवस्था के अनुसार अशिक्षित था। राजनीति की बड़ी-बड़ी बातें और कार्यक्रम उनकी समझ में नहीं आते थे। इस हेतु ही उस समय के राष्ट्रीय चरित्र के संगठन कांग्रेस ने जागरूकता कार्यक्रम चलाए और जयराज जैसे युवकों की मदद से इस प्रशिक्षण कार्यक्रम को संभव बनाया। आम जनता को ज्यादा से ज्यादा आत्मनिर्भर बनाना, ऐसे कार्यक्रमों का उद्देश्य था। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति जागरूक हो, समस्याओं को ठीक ढंग से समझे और उन पर अपनी प्रतिक्रिया दे, यह आवश्यक था। जयराज जैसे युवक अपने कार्यक्रमों में लगातार इस बात पर बल देते थे कि सिर्फ नेतृत्व ही सारी जिम्मेदारी नहीं निभा सकेगा बल्कि आम जनता को भी देशहित के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझना होगा। कांग्रेस ने राजनीतिक जागरूकता के साथ-साथ सृजनात्मक कार्यों का भी प्रचार-प्रसार किया और यह सभी कुछ महात्मा गांधी की प्रेरणा से संभव हुआ। जैनेंद्र स्वयं महात्मा गांधी के कार्यक्रमों से बहुत ज्यादा मुतमईन थे, इसीलिए उनके कथा साहित्य में इस संदर्भ में अवसर मिलते ही वे इनकी बात भी निकालते हैं। जयराज के माध्यम से इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए जैनेंद्र लिखते हैं, "कांस्ट्रक्टिव वर्क ही वर्क है। हमें राजनीतिज्ञ नहीं चाहिए, सेवक चाहिए। सेवक अपने को सेवा में खो दे। अपने को खोने का

अर्थ प्राण-रस को जनता के मूल में सींच देने का है। भूखे के साथ, बेरोजगार के साथ अपने को मिला देने की कोशिश हमें करनी है। भूखे को खाना, बेकाम को काम और आशंकित को ढाढस हमें देना है। चरखा यह सब देता है।" इस तरह कहानी के माध्यम से हमें तत्कालीन परिवेश की भी जानकारी जैनेंद्र देते हैं।

यह समस्त राजनीतिक कार्य-व्यापार कहानी में आनुषंगिक ढंग से आया है। अपनी वास्तविक संवेदना का वहन कहानी तब करना आरंभ करती है, जब जयराज हरीपुर पहुंचता है और सभा में सम्मिलित होता है। सभा में ही उसे सुदर्शना के दर्शन होते हैं। माल्यार्पण की जिम्मेदारी सुदर्शना को ही सौंपी गई थी। सुदर्शना और जयराज के संबंधों को लेकर कहानी में सांकेतिक रूप से बात कहते हुए जैनेन्द्र आगे बढ़ते हैं। लगभग आधी कहानी समाप्त हो जाने के बाद जिस ढंग से वे एक दूसरे से मिलते हैं, उससे यही अंदाजा सहज ढंग से लगता है कि वे पूर्व-परिचित हैं। परंतु कहानीकार इसे सांकेतिक ही बनाए रहते हैं। स्पष्ट रूप से इसका कोई वर्णन नहीं करते। माल्यार्पण के दौरान जयराज, सुदर्शना के बारे में जो सोचता है, उससे पूर्व-परिचय की दुविधा भी समझ में आती है, "यह स्वागत-गान प्रदान करने वाली, मात्र नारी शक्ति की ही प्रतिनिधि होकर, मेरे गले में यह माला डाल गयी है। यह माला न मेरे लिए है, न उसकी है। वह कौन है ? उसका नाम सुदर्शना है। पर सुदर्शना नाम ही है। वह इस समय भारतीय नारी की गरिमा को अपने कल-कंठ के गुंजार से मुझको उपलक्ष्य बनाकर भारत माता के पद-पद्मों में भेंट देने प्रस्तुत हुयी एक सेविका है।" कहानीकार द्वारा प्रस्तुत इस कथन से जयराज जिस ढंग से सुदर्शना को लेकर दुविधा प्रकट करता है, उससे उसके पूर्व-परिचित होने का संकेत मिल जाता है। लगभग ऐसी ही सांकेतिक मुद्रा में जयराज और सुदर्शना के संबंधों को लेकर पूरी कहानी में एक भ्रामक स्थिति बनी रहती है। जैसे जैनेंद्र स्पष्ट रूप से कहने के बजाय संकेतिक ढंग से अपनी बात कहना ज्यादा ठीक समझते हैं।

जयराज अपनी सभा खत्म करके उसी दिन बिलासपुर लौटना चाहता है और इसी उहापोह में सभा में वक्तव्य देते हुए देरी हो जाने के कारण उसकी पहली गाड़ी छूट जाती है। स्टेशन पहुंच जाने के बावजूद वह स्टेशन में रुकने से बेहतर यह समझता है कि कार्यालय में कुछ और कांग्रेसी पार्टी प्रतिनिधियों से मिल लिया जाए और वह पुनः वापस आता है। इसी क्रम में मौसम बिगड़ जाने के कारण पुनः जब वह स्टेशन की ओर लौटता है तो किसी साधन की व्यवस्था न हो पाने के कारण उसे पैदल ही स्टेशन की ओर लौटना पड़ता है। उस अंधेरे और भारी बारिश में सुदर्शना भी आ मिलती है। इस सूत्र को जोड़ने से पूर्व कहानीकार सुदर्शना की स्थिति को भी कहानी में स्पष्ट करता है। परंतु यह स्पष्टीकरण भी सांकेतिक मुद्रा में है, जिससे पाठक उहापोह की स्थिति में बना रहता है। जयराज से मिलने के लिए सुदर्शना आपने पति से जिस रूप में बातें कहती है, उससे जयराज के प्रति उसके आकर्षण और मोह का संकेत मिलता है। सुदर्शना और उसके पति के बीच लंबे संवादों के द्वारा कहानीकार ने सुदर्शना की स्थिति को व्यक्त किया है। वह अपने पति से कहती है, "तुमसे मैनें बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है। वह सब मैंने चोरी की है। ठगी की है। मैं उसकी बननेवाली कोई न थी। मैं अपात्र थी। आज मुझे पता चल गया है कि अपना सब-कुछ मैं तुम पर नहीं वार चुकी। भीतर-ही-भीतर कुछ बच गया था, जो आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणों में मैं अर्पण नहीं कर सकी थी। यों न देखो..... मुझे देखो। मैं तुम्हें धोखा देती रही। तुमसे पाती सब कुछ रही, देने में चोरी करती रही।" सुदर्शना का यह कथन वैवाहिक

जीवन के प्रति उसके पूर्ण समर्पण के प्रति संदेह प्रकट करता है। दरअसल सुदर्शना का पति नशेड़ी और ऐबी है। जिसके चलते संभवत: उनका वैवाहिक जीवन क्लेषमय है और जितना इस बात को सुदर्शना समझती है, उतना ही उसका पति भी जानता है।

आगे कहानी के वर्णनों के अनुसार यह पता चलता है कि सुदर्शना लगभग एकाकी जीवन व्यतीत कर रही है। और संभवतः इसीलिए वह सार्वजनिक जीवन में भी प्रविष्ट हुई है। पति की इस नकारात्मक स्थिति के चलते वह पूर्ण गृहिणी नहीं बन सकी । अर्थात वह इस वैवाहिक जीवन को बिना संतान के आगे ढकेल रही है। उसके संस्कार ऐसे हैं कि वह किसी भी तरह का कपट या चोरी करने के बजाए अपने पति को वास्तविकता बताकर फिर कोई कदम उठाना चाहती है । उसे कुछ अपराध-बोध भी है । वह अपने पति से कहती है, "मैं तुम्हारे घर से निकाल देने लायक हूँ। मैं सच कहती हूँ, जान-बूझकर मैं तुम्हें धोखा देने वाली न थी। लेकिन यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मैं पूरी तरह समर्पित नहीं हूँ। सो आज ही तुम्हारे सामने खड़ी हो कि मुझे काला मुंह कर जाने दो। अपनी कृपा के नीचे मुझे एक क्षण भी मत टिकने दो । तुम अपनी कृपा की छाया तो उठाओगे नहीं, तब मुझे ही इजाजत दो कि मैं उसे कलंकित न करूँ।" वह जानती है कि वह जो कुछ भी करने जा रही है, उसके बाद उसका कोई नैतिक दावा अपने पति पर नहीं बनता है । इसलिए वह अपने सच को कहकर जैसे अपने दिल के बोझ को हल्का कर लेना चाहती है।

इस पूरी कहानी से गुजरते हुए पाठकों को कई तरह के विरोधाभासों का सामना करना पड़ता है। सबसे मुख्य विरोधाभास और दुविधा तो जयराज तथा सुदर्शना को लेकर पाठकों के मन में कहानी के शुरू से अंत तक बनी रहती है। उनके रिश्ते के स्वरूप को कहानीकार पूरी कहानी के दौरान मुखर ढंग से स्पष्ट नहीं करता और न ही सुदर्शना तथा उसके पति की स्थिति को । कभी तो सुदर्शना के संवादों से ऐसा लगता है जैसे पति ही उसकी सभी समस्याओं का कारण है, परंतु कहीं उसके संवाद इस तरह प्रस्तुत होते हैं, जिससे स्थिति अत्यंत अस्पष्ट हो जाती है, "जानकर मुझसे तुम्हारा अमंगल न होगा । तुम्हारे प्रेम को मैं विफल नहीं कर सकती । तुम्हारे-से पति को पाकर मैं घर को आनंद से भरा क्यों न रख सकी ? घर पर क्यों सदा उदासी की छाया आ-आ मंडराती रही ? क्यों हमारे घर में शून्यता जमी रहती थी, जबकि वहां पूर्णता उमगी रहनी चाहिए थी ? कारण मैंने आज जाना है। मेरे समर्पण में त्रुटि थी, मेरे पतिव्रत में शल्य था। मेरे मन में चोरी थी, चलन में खोट थी। अब मैं तुम्हारे दान को लांछित नहीं करूंगी।"

इस स्थिति के बाद विस्फोटक स्थिति को जन्म लेना चाहिए था, परंतु वह न होकर कहानीकार बेहद संयत ढंग से कहानी को ऐसी दिशा की ओर मोड़ देता है जो पाठकों को भी असहज कर देती है। सुदर्शना का पति सुदर्शना के स्वीकार के सामने जिस तरह प्रस्तुत होता है, वह स्थिति प्रकट करते हुए कहानीकार लिखता है, "सुदर्शना, मुझे बताओ क्या है? इस तुम्हारे धड़कते हुए दिल को मैं समझना चाहता हूँ, समझ नहीं सकता । मैं नहीं समझता, आत्मा। मैं नहीं समझता, धर्म। मैं नहीं समझता, सदाचरण। लेकिन मैं समझता हूँ, प्रेम। सुदर्शना मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। जानता हूँ, तुम मेरी समझ से बाहर रही हो। मुट्ठी की पकड़ में समायी नहीं । तुम मुझे सदा बचा ही गयी हो । लेकिन सुदर्शना, मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। मैं शराबी हूँ, ठीक है। मैं ऐबी हूँ, ठीक है। मैं झूठा हूँ, ठीक है। लेकिन मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। सुदर्शना, तुम यह जानती हो । मैंने कभी पतिव्रत के बारे में पूछा है ? मैंने क्या

अपने में उसकी लियाकत पैदा की है ? कुछ चाहूँ, इससे पहले मैं अपनी तरफ बिना देखे कैसे रहूँ ? मुझे नहीं चाहिए कुछ सुदर्शना, बस तुम मुझे प्रेम की स्वीकृति भर दो।"

सुदर्शना के पति का यह संवाद स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि दोनों का वैवाहिक जीवन बेहद असंगत परिस्थिति में चल रहा है और यह जो कुछ भी हो रहा है, उसे उसका पति भी मानसिक रूप से स्वीकार कर चुका है। उसकी आस्था केवल और केवल सुदर्शना के बने रहने में है, अवान्तर बातों में नहीं, "सुदर्शना, मैं तुमसे कम बोला। तुमसे अलग-अलग रहा। क्योंकि मेरा मुंह न खुलता था। मुझे हिम्मत न होती थी। क्योंकि मैं जानता था - मैं खोटा हूँ। लेकिन तुम छूटने या छोड़ने की बात करोगी, तो खोटा दिल भी थोड़ा-बहुत तुम पर अपना दावा बताना चाहेगा, सुदर्शना। आज इसका गरजते आसमान के नीचे खड़े होकर मैं कहता हूँ, तुम पतिपन का कोई दावा नहीं है। मेरे प्रेम का ही जो समझो दावा है। और यह प्रेम किसी तरह की कैफियत तुमसे नहीं माँगता।" इस तरह सुदर्शना के वैवाहिक जीवन की स्थितियों का खुलासा कहानीकार करता है। इस तरह की अपुष्ट स्थितियां जैनेंद्र की कहानियों में भरी पड़ी हैं। शायद कहानीकार का अंदाज मूल-मंतव्य कह देना तो है, परंतु उसके पीछे जिस ढंग की परिस्थितियाँ होती हैं, उनका अंदाजा लगाना बहुत कुछ वह पाठकों पर छोड़ देते हैं। जैनेंद्र की इस प्रवृत्ति के संदर्भ में गोपाल राय अपनी पुस्तक 'हिंदी कहानी का इतिहास' में लिखते हैं, "जैनेंद्र इस बात की चिंता नहीं करते कि......... प्रसंगों में कोई तर्क या तारतम्य है या नहीं; वे पाठक से अपेक्षा करते हैं कि वह उसे बिना किसी ननु-नच के स्वीकार कर ले।" जैनेंद्र की संवेदनात्मक सूत्रबद्धता को स्पष्ट करने की दृष्टि से गोपाल राय का यह कथन अत्यंत प्रासंगिक है।

कहानीकार यह संकेत तो स्पष्ट रूप से कर देता है कि सुदर्शना का वैवाहिक जीवन बेहद असंतोषप्रद है और इस विभीषिका को वह लंबे समय से सहन भी कर रही है। जिस प्रकार वह अपने पति से क्षमा मांगती है, इससे यह भी लगता है कि जयराज के प्रति एक आकर्षण उसके मन में सदा से रहा है और इसीलिए वह अपराध बोध महसूस करती है। जिसके लिए वह अपने पति से क्षमा मांगती है और आज जब वह सामने आता है, तो अपने को न रोक पाने की स्थिति में वह अपने पति से संभवत: जयराज से मिलने की अनुमति चाहती है। और ऐसा हो जाने पर वह जयराज से मिलने के लिए स्टेशन की ओर निकल पड़ती है, "सुदर्शना सब ओर से छुटी, इस समूचे अंधेरे, सन्नाटे भरे शून्य के बीच में से निरुद्देश्य अनजानी राह पर जिसके साथ चली जा रही है, उसी के प्रति वह अपने में शंका कहां से लाए ? वह चली ही जा रही है, शब्दहीन, संदेहहीन, निर्व्याज और सम्यग भाव से, जिसे करने को न प्रश्न की आवश्यकता है, न उत्तर की अपेक्षा है। जिसमें जिज्ञासा का अवकाश नहीं है। भवितव्यता के संबंध में किसी प्रकार की आशंका के लिए गुंजाइश नहीं है। संपूर्ण असंदिग्ध, निःकांक्ष्य और नि:शंक, वह चली ही जा रही है। कहां ? - नहीं जानती। क्यों ? - नहीं जानती। और जानने की इच्छा भी हो, इतना भर भी अभाव, इतना भी रिक्त उसमें नहीं है।" इस तरह पति की सहमति प्राप्त कर सुदर्शना जयराज से मिलने के लिए निकल जाती है और बेहद नाटकीय परिस्थितियों में वह सड़क पर जाते हुए जयराज से मिलती है और फिर उसके साथ-साथ स्टेशन आ जाती है। इसके बाद की सभी स्थितियों का नाटकीय सृजन कहानीकार के द्वारा किया गया है, जो बिल्कुल भी सहज नहीं लगता। परंतु जैसा कि गोपाल राय जैनेंद्र के संदर्भ में लिखते हैं कि परिस्थितियों का सृजन करते हुए जैनेंद्र इस बात की बिल्कुल भी परवाह नहीं करते कि पाठकों को यह कितनी सहज या असहज लगेगी।

स्टेशन में जयराज और सुदर्शना के संवाद से कहानीकार यह सूचित करता है कि जैसे जयराज को अपने पूर्व में लिए गए निर्णयों पर बेहद पछतावा है। प्रेम का जो तिरस्कार उसने विवाह को अस्वीकार करके किया था, आगे चलकर अपने उस निर्णय पर उसे असंतुष्टि ही होती है। सुदर्शना से अपने अंतर-मन की बात बांटते हुए वह कहता है, "मैं नहीं जानता था सुदर्शना, कि मुझमें तुम अभी हो और तुमसे इस तरह मिलकर अपने भीतर वाली तुमको मुझे पा लेना है। और इस तरह तुम्हारे द्वारा ही मैं अपने को ज्यादा पाऊँगा, मैं नहीं जानता था। अकेला चलता रहा। आशा हार-हार रहती थी और जीवन रेगिस्तान लगता था। लेकिन फिर-फिर कर मैं राष्ट्र के नाम को पकड़ लेता रहा और चला चलता रहा। मैं चलता ही चला आ रहा हूँ। मैंने पीछे की तरफ नहीं देखा, आगे राष्ट्र को रखकर वहीं पाँख गाड़ मैं भागता रहा। जी हारता और मैं आंखें मीच लेता। मैं कहता, 'राष्ट्रदेवो भव।" उसके इस कथन से ऐसा लगता है, जैसे राष्ट्र सेवा भी उसके जीवन में एक पलायन की स्थिति की तरह है। एक स्थिति से भागते हुए वह इसको निभाता चला जा रहा है। सुदर्शना उसके साथ पूर्ण समर्पण की स्थिति में उपस्थित है और उसका मन दुविधा में इधर उधर भटक रहा है। प्राप्ति और पलायन दोनों एक साथ उसके मन में डेरा डाले बैठे हैं। और वह सोचता है कि, "दुनिया से हटा और उसके विधि-निषेध से मुक्त, दो घड़ी रुककर वहां से चले जाने के लिए जब सब आंखों के अभाव में यहां वह स्टेशन की बेंच पर बैठा है, तब क्या है जिसकी उसे आशंका हो ? क्या है जिसे उसे रोकने की जरूरत हो ? क्यों नहीं निर्भय होकर वह सब कुछ के प्रति वह अपने को खोल देता है ? द्वंद्व काहे का ? 'न' - कार किसके प्रति ?" कहानी के अंत में लेखक प्रतीकात्मक ढंग से यह सूचित करता है कि जयराज और सुदर्शना दोनों अपने अधूरे प्रेम को प्राप्त कर अपनी-अपनी राह की तरफ निकल जाते हैं। इस तरह बेहद नाटकीय घटनाओं के द्वारा यह कहानी अंत तक पहुंचती है।

एक रात कहानी जैनेंद्र की आरंभिक कहानियों में से एक है और जैसा कि हम देख चुके हैं लंबी कहानियों के दौरान जैनेंद्र कुछ भटकाव की स्थिति में भी आ जाते हैं, इस कहानी में भी ऐसा ही होता है। जिस तरह की नाटकीय घटनाओं का सृजन उन्होंने इस कहानी में किया है, वैसा जल्दी अन्य कहानियों में नहीं मिलता है। परंतु जैनेंद्र जो दिखाना चाहते थे, वह दिखाने में वे सफल रहे हैं। विवाह के बाद की असहज स्थितियों में इन सारी घटनाओं का सूत्रपात होता है। यह कहानी जयराज और सुदर्शना के मूल्यांकन हेतु नहीं है। बल्कि यह उन परिस्थितियों का सृजन करती है, जिसमें इस तरह की घटनाएँ संभव हो जाती हैं। सामाजिक नैतिकता-अनैतिकता के आधार पर इनका मूल्यांकन व्यक्तिगत न होकर परिस्थितिगत हो जाता है। ऐसी स्थितियाँ वैवाहिक संबंधों में संभव है और ऐसे परिणाम भी। यही जैनेंद्र दिखाना चाहते हैं। यही उनका उद्देश्य है।

७.४ कहानी पत्नी : मूल संवेदना

समकालीन स्त्री संदर्भों में अपने वैविध्यपूर्ण लेखन के लिए जैनेंद्र विशिष्ट रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपने समय और परिवेश में स्त्रियों की आशाओं, आकांक्षाओं और उनके मनोजगत को विस्तार से खोलते हुए कई विशिष्ट कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। 'एक रात', 'पत्नी', 'रूकिया बुढ़िया', 'जाह्नवी' आदि जैसी कहानियाँ तथा 'परख', 'त्यागपत्र', 'सुनीता' जैसे उपन्यास इस बात का उदाहरण हैं। जैनेंद्र ने बिना किसी लाग लपेट के या

अपने समय के नैतिक दबावों को दरकिनार करते हुए अपनी बात अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से पाठकों तक प्रेषित की है।

कहानी 'पत्नी' के द्वारा जैनेंद्र ने सुनंदा के रूप में भारतीय ग्रहणी की सहज-सरल जीवनचर्या और उसके अंतर्द्वंदों को प्रकट किया है। सुनंदा जैसी नियति अधिकतर युवतियों की है। अपने पति कालिंदीचरण के साथ रह रही सुनंदा परिस्थितियों के साथ कैसे बसर कर रही है, वह इन संदर्भों में क्या और कैसा सोचती है ? इसका चित्रण इस कहानी में हुआ है। इसके साथ-ही-साथ पति-पत्नी के जीवन में एक अव्यक्त प्रेम उनके संबंधों की आधारशिला होता है। रोजमर्रा के जीवन में यह भावना रिश्ते के स्थायित्व पर अनूठे ढंग से काम करती है। भारतीय पत्नी के चरित्र में यह लगाव और प्रेम अनूठे ढंग से अनुस्यूत रहता है। वह स्वयं भूखी रहती है, परंतु पति का पूरा ध्यान रखती है। वह पति से स्वयं रूठी रहती है पर उसके सम्मान पर यदि कोई बात आती है, तो रक्षा के लिए सबसे पहले वही खड़ी होती है। उसमें एक अजब ढंग की अधिकार भावना होती है। इन सभी बातों का सार्थक चित्रण इस कहानी में जैनेंद्र के द्वारा किया गया है।

७.४.१ पत्नी : भारतीय गृहिणी का अंतःसंवाद:

प्रत्येक साहित्यकार अपनी निजी स्वाभाविक रुचियों और आस्थाओं के अनुसार सार्थक और प्रभावोत्पादक रचनाओं का सृजन करने में समर्थ होता है। जैनेंद्र की स्वाभाविक रुचि, प्रेम और दांपत्य के विभिन्न अंतर्द्वंदों को अभिव्यक्त करने में रमती है। जैनेंद्र के साहित्य में विभिन्न प्रकार के स्त्री चरित्रों की सृष्टि हुई है। एक तरफ जहाँ उन्होंने भारतीय परंपरागत समाज में विभिन्न प्रकार के द्वंद्व और तनावों के साथ संघर्ष करती स्त्री को प्रामाणिक रूप से चित्रित किया है, वहीं दूसरी तरफ स्त्री का ऐसा रूप भी चित्रित है, जो विभिन्न नजरियों से अपनी निजी स्वतंत्रता को घोषित करती दिखाई देती है। इन स्थितियों में जैनेंद्र के पात्र विद्रोह करते नहीं दिखाई देते बल्कि वे सहज तरीके से घटित होते हैं और उनका मानसिक अंत:जगत पाठकों के सामने उपस्थित होता है। जैनेंद्र उन चरित्रों की सहजता से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं करते या किसी प्रकार का निर्णय देते नहीं दिखाई देते। निर्णय का कार्य वे पाठकों पर छोड़ देते हैं। 'पत्नी' कहानी में जैनेंद्र ने एक तरफ तो समय संदर्भों के अनुरूप राष्ट्रीय आंदोलन जैसे विषय को रखा है और वहीं दूसरी तरफ एक मध्यमवर्गीय परिवार की स्त्री सुनंदा के अंतर्द्वंद को भी सामने रखा है। इन दोनों ही स्थितियों के बीच का द्वंद्व इस कहानी में भली प्रकार से चित्रित हुआ है।

कालिंदीचरण की पत्नी सुनंदा कोई बीस-बाइस बरस की युवती है। देशसेवा में समर्पित उसका पति कालिंदीचरण, देशसेवा संबंधी अपने कार्यों के कारण वक्त-बेवक्त घर आ पाता है और अचानक आज आने वाले अतिथियों का संग-साथ भी होता है। सुनंदा की दिनचर्या है कि वह पूर्ण रुप से पति सेवा को ही समर्पित है। कोई अन्य विशेष उद्देश्य उसके जीवन में नहीं है। पति की इस व्यस्तता के चलते उसके जीवन में बहुत अकेलापन है। उसके अकेलेपन में उसकी पीड़ा को बढ़ाने वाली एक दुर्घटना भी है, उसका एकमात्र पुत्र जो कि अब इस दुनिया में नहीं रहा। इस तरह सुनंदा एकाकी और अनिश्चित जीवन जीने को अभिशप्त है। परंतु इन स्थितियों के बावजूद कालिंदीचरण के प्रति उसके मन में अनूठा स्नेह है। वह कालिंदीचरण से असंतुष्ट होते हुए भी स्नेह और सहानुभूति रखती है, "सुनंदा

सोचती है - नहीं, सोचती कहाँ है, अलस-भाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाएँ, वह जाने कब आ जाएंगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।" कालिंदी अपने सार्वजनिक जीवन में अत्यंत व्यस्त है। परंतु सुनंदा की यह अपेक्षा होती है कि उसका पति यह सारी बातें उससे भी करे। उसका अकेलापन उसे टीसता है। वह जानती है कि उसमें इतनी बुद्धि नहीं है कि वह इन बड़ी-बड़ी बातों को समझ सके परंतु उसे लगता है कि इस बहाने कम से कम वह पति से संवाद तो कर सकेगी और फिर क्या वह भी थोड़े प्रयास से इन बातों को समझ ना सकेगी, "उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ?" उसे कालिंदी की अनिश्चित दिनचर्या पर कोफ्त होती है, चिड़चिड़ाहट होती है पर उसे सहानुभूति भी होती है। उसे इस बात का संतोष होता है कि कहीं-न-कहीं उसका पति कुछ तो बड़ा काम कर रहा है। परमार्थ भाव से वह इतनी तकलीफें सह रहा है। कोई जानबूझकर तो यह तकलीफ नहीं सहेगा। वह ज्यादा नहीं जानती-समझती है। उसे नहीं मालूम कि देश और राष्ट्र में क्या चल रहा है। इनका कारण क्या है। इनका निवारण क्या है। पर उसे अपने पति की आस्था पर विश्वास है। और अनायास भाव से वह इस आस्था के साथ-साथ है, "वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती। वह एक बात जानती है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर-मकान छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे।"

सुबह से इंतजार करते-करते अंततः दोपहर एक बजे उसका पति कालिंदीचरण अपने तीन-चार मित्रों के साथ घर वापस आया। सब में देशोद्धार को लेकर बड़ी बहस चल रही है। इस बहस की आवाजें उसके कानों तक पहुंच रही हैं, " भारत माता को स्वतंत्र करना होगा और नीति नीति हिंसा अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है।" इन बड़ी बातों के बीच उसकी दुविधा यह है कि कालिंदी भोजन करें और वह चौका समेटे। खाना पक चुका है पर इन बिन-बुलाए अतिथियों के लिए काफी नहीं है। घर वापस आने पर अनायास उसके पति को ध्यान आता है कि न उसने खाना खाया है और न ही अपने मित्रों को पूछा है और भीतर सुनंदा से भोजन के संबंध में पूछने पर वह चुप लगा जाती है। वह भीतर ही भीतर क्रोधित है। एक व्यक्ति के भोजन पर चार व्यक्ति का भोजन तो कोई बनाकर नहीं रखता है। कालिंदी का संकोची व्यक्तित्व उसे नहीं भाता है। वह सोचती है, "उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा-प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं। हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना और वह चुप रही।" अंततः उसके चुप रहने पर कालिंदी थक-हार कर कि 'हम बाहर खाना खा लेंगे' कहकर मित्रों के पास आ जाता है। और फिर सुनंदा चुपचाप सारा भोजन एक थाली में रखकर कालिंदी और उनके मित्रों के सामने रख देती है। अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखती। उसे भीतर-ही-भीतर इस बात का बहुत ख्याल है कि ऐसा नहीं हो सकता कि वह स्वयं तो भोजन कर ले और कालिंदी के मित्रों को भूखा रहने दे। इन सभी स्थितियों के प्रति एक अव्यक्त क्रोध जो उसके मन में है तो उसके कारण वह कालिंदी से ऐसा व्यवहार करती है। उसकी इस व्यथा को कालिंदी भी समझते हैं। वैसे भी कालिंदी

अपने दल समूह में सुधारवादी और संकोची व्यक्ति माने जाते हैं, विवेकशील माने जाते हैं, "कालिंदीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं। कालिंदीचरण विवाहित ही नहीं है, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं।" परंतु दिन भर घर की चारदीवारी में माथा खटने के बाद एक पत्नी की एक सरल-सहज अपेक्षा यह होती है कि उसका पति उससे उसका दुख-सुख पूछे। उससे दो बात करे। भोजन समाप्त हो गया, कोई बात नहीं पर झूठे ही पूछ तो ले। इतना ही उसके लिए काफी है, "उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी। क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। मानो उसका जो तनिक-सा मान था वह भी कुचल गया हो।" कहानी पढ़ते हुए एक बात जो बार-बार सुनंदा के व्यक्तित्व को लेकर महसूस होती है, वह यह है कि, सुनंदा एक मानिनी स्त्री है। जीवन सुख और दुख दोनों का सम्मिलित नाम है और जीवन को लेकर उसके मन में किसी प्रकार के अंतर्विरोध नहीं हैं परंतु उसमें अधिकार-बोध है। वह अधिकार लेना और खुद को अधिकार में छोड़ना जानती है। कालीचरण का व्यक्तित्व संकोची और उदार व्यक्तित्व है। वह अपनी पत्नी से भी जिस संकोच भाव में व्यवहार करता है, उससे यह पता चलता है कि कहीं-न-कहीं उसे इस बात का बोध है कि वह सुनंदा को वह सब कुछ नहीं दे पा रहा है, जो एक स्त्री की अपेक्षा होती है। इसके चलते वह अधिकार जताने जैसा व्यवहार भी नहीं करता है। यही बात सुनंदा को खटकती है। वह चाहती है कि पति अधिकार-भाव से उससे व्यवहार करें। भले ही वह देशकाल परिस्थितियों को उतना नहीं समझ रही है, परंतु उन संदर्भों को भी वह उससे साझा करें। वह उसके हर सुख और दुख में साथ देना चाहती है। और ऐसा न होने पर ही वह कालिंदी के प्रति असंतोष भाव प्रकट करती है।

इस तरह जैनेंद्र इस कहानी में एक पत्नी के विभिन्न मनोभावों को यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित करते दिखाई देते हैं। जैसा कि जैनेंद्र की शैली है कि, कहानी की मूल संवेदना के साथ में परिस्थितिगत प्रभावों को भी चित्रित करते चलते हैं, इस कहानी में भी ऐसा देखने को मिलता है। कालिंदीचरण के बहाने जैनेंद्र ने उस समय की राष्ट्रवादी गतिविधियों का चित्रण इस कहानी में किया है। जैनेंद्र मूलतः गांधीवादी विचारधारा के समर्थक थे। अपने जीवन का थोड़ा समय उन्होंने राजनीतिक गतिविधियों में भी बताया था। युवावस्था में असहयोग आंदोलन के समय से लेकर अगले कुछ वर्षों तक वे ऐसी गतिविधियों में संलग्न रहे। जेल भी गए। परंतु कुछ समय बाद वे धीरे-धीरे इनसे कटते गए और साहित्य-सर्जना की ओर मुड़ते गए। परंतु उनकी वैचारिक आस्थाएँ, शुरू से अंत तक गांधीवाद के प्रति बनी रहीं। यहाँ वे ऐसा कोई दुराग्रह प्रस्तुत करते नहीं दिखाई देते परंतु उन्होंने आजादी के संदर्भ में क्रांतिकारी और अहिंसावादी - दोनों ही मतों का उल्लेख किया है। क्रांतिकारी गतिविधियों के संदर्भ में कालिंदी के एक मित्र की मार्फत वे लिखते हैं, "भारत माता को स्वतंत्र करना होगा - और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक ! हाँ, आतंक। हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा ? लोग हैं जो कहते हैं आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं। हाँ वे हैं बच्चे और मूर्ख। उन्हें बुज़ुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह

अपने बाल-बच्चों का । हमें नहीं गर्ज़ धन-दौलत की । तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं ? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही । उससे वे डरें जो डरते हैं । डर हम जवानों के लिए नहीं हैं ।" दरअसल जैनेंद्र जब अपनी सर्जना में व्यस्त थे, उस समय भारत में क्रांतिकारी गतिविधियाँ जोरों पर थीं और चूंकि उस समय इन गतिविधियों की वैचारिक आस्थाओं से आम जनमानस बहुत ज्यादा परिचित नहीं था, इसलिए प्रथम श्रेणी का राजनीतिक नेतृत्व ऐसी गतिविधियों को भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए ठीक नहीं समझता था । परंतु भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारी इस मार्ग के समर्थक थे और वे प्राणपण से इस हेतु लगे थे । दूसरी तरफ कालिंदी के द्वारा उन्होंने अहिंसावादी नीतियों के संदर्भ में उल्लेख करते हुए कहा है, "हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए । आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है । दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं । हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं । सरकार व्यक्ति और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है । हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं - इसी को मुक्त करना चाहते हैं । आतंक से वह काम नहीं होगा । जो शक्ति के मद में उन्मत्त हैं, असली काम तो उनका मद उतारने और उनमें कर्तव्य भावना का प्रकाश जगाने का है ।" इस तरह जैनेंद्र अपनी वैचारिक आस्थाओं को भी कहानी के मूल-मंतव्य के साथ-साथ प्रकट करते हुए चलते हैं ।

निश्चित रूप से कहानी की मूल संवेदना सुनंदा का जीवन और उसकी मानसिक उहापोह के साथ तत्कालीन परिस्थितियों का संघर्ष है । एक गृहिणी के रूप में सुनंदा इस संघर्ष में क्या योगदान कर रही है और क्या योगदान कर सकती है ? जैनेंद्र ने इस बात को स्पष्ट रूप से दिखलाने का प्रयास किया है । प्रतीकात्मक ढंग से यह कहानी राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय स्त्रियों के योगदान को लक्षित और प्रकट करती दिखाई देती है । भले ही सुनंदा इतनी पढ़ी-लिखी न थी कि वह इन बड़ी-बड़ी बातों को समझ सकती या फिर अपनी कोई राय दे सकती पर वह सबसे बड़ा योगदान जो कर सकती थी, वह यह है कि कालिंदीचरण और उसके मित्रों को वह वातावरण और शांति दे सकती थी, जिससे वह अपना कार्य सहज रूप से कर सकें और यह वह कर भी रही थी । राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्री वर्ग की भूमिका को कमतर नहीं आंका जा सकता । उन्होंने जिस रूप में अपना योगदान इस आंदोलन को दिया है, वह अविस्मरणीय है । इस आंदोलन के लिए उन्होंने अपनी आशाओं-आकांक्षाओं की तिलांजलि दी है । उन्होंने अपने सहज-सरल जीवन को जटिल बनाया है और खुशी-खुशी उस जटिलता को अपनाया है । इस तरह यह कहानी उपरोक्त विभिन्न संदर्भों में लिखी गई एक श्रेष्ठ कहानी है ।

जैनेंद्र के कहानी लेखन के संदर्भ में एक बात विशिष्ट ढंग से लक्षित की जा सकती है कि आकार की दृष्टि से जैनेंद्र की छोटी कहानियाँ कसी हुई और एक विशेष दिशा की तरफ प्रवाहपूर्ण ढंग से प्रवाहमान दिखाई देती हैं । अपनी छोटी कहानियों में अपनी बात को वे बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से प्रेषित कर सके हैं । वहीं दूसरी तरफ यह बात लंबी कहानियों के संदर्भ में नहीं कही जा सकती । लंबी कहानियों में कहानी की मूल संवेदना से उनका भटकाव सहज ही लक्षित किया जा सकता है । एक रात कहानी इसका प्रमुख उदाहरण है, जो आकार की दृष्टि से अपने लंबे होने के चलते शिल्प की दृष्टि से अत्यंत लचर कहानी है । जिस तरह की प्रभावोत्पादकता 'पत्नी', 'दो सहेलियाँ', 'खेल', 'अपना अपना भाग्य', 'रूकिया बुढ़िया' आदि

कहानियों में देखने को मिलती है, वह उनकी लंबी कहानियों में नहीं दिखाई पड़ती। 'पत्नी' कहानी भी आकार की दृष्टि से एक छोटी कहानी ही कही जाएगी, जिसमें कहानी की मूल संवेदना को जैनेंद्र अत्यंत प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त करने में समर्थ हुए हैं।

७.५ सारांश

प्रेम और दांपत्य के जटिल संबंधों को प्रेषित करने की दृष्टि से जैनेंद्र हिंदी के पहले ऐसे कथाकार माने जा सकते हैं, जिन्होंने दुस्साहस का परिचय देते हुए ऐसे विषयों को अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्थान दिया। स्त्रियों के संदर्भ में इन विषयों के महत्त्व को भली-भांति समझते हुए उन्होंने पूरी शिद्दत से स्त्री-जगत की विभिन्न मनोदशाओं को इनमें चित्रित किया है। इस इकाई में 'एक रात' कहानी इस दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय कहानी है। जिसमें उन्होंने जयराज और सुदर्शना के चरित्रों के माध्यम से हिंदी कहानी में प्रेम और दांपत्य के संबंध को एक नए आयाम से देखा है। जैनेंद्र अपने सर्जन के दौरान अपने मूल-मंतव्यों को लेकर बेहद प्रेरित रहते हैं और वही प्रेषित करना उनका मुख्य उद्देश्य होता है। कार्य-व्यापार के गुम्फन में इसीलिए कहीं कहीं असहजता भी पाठक महसूस करता है। जिसे लेकर आलोचक गोपाल राय कहते हैं, "प्रेम और दांपत्य का यह द्वंद्व समकालीन भारतीय स्त्री की अपरिहार्य नियति थी, जिसे केंद्रीय महत्त्व देने वाले प्रथम हिंदी कहानीकार जैनेंद्र ही हैं। सच पूछें तो प्रेम और दांपत्य के द्वंद्व का चित्रण ही जैनेंद्र की कहानियों की मुख्य पहचान है।........ यह प्रेम के बारे में जैनेंद्र की दृष्टि है। कितने लोग इससे सहमत होते हैं या कितने लोगों तक यह विचार या भाव संप्रेषित होता है, जैनेंद्र इसकी चिंता नहीं करते। वस्तुतः जैनेंद्र तो इस बात की भी परवाह नहीं करते कि उन्होंने अपनी बात कहने के लिए जो प्रसंग निर्मित किया है, वह पाठक के सामान्य अनुभव, इंद्रिय-बोध के कितना अनुकूल है।" इस तरह ऐसे संदर्भों को प्रस्तुत करने की दृष्टि से जैनेंद्र हिंदी कथा साहित्य के इतिहास में अपने आप में अनोखे हैं।

इस इकाई में सम्मिलित दूसरी कहानी 'पत्नी' अलग तरह के संदर्भ और परिप्रेक्ष्य को चित्रित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सुनंदा जैसे पात्र, परिवार संस्था में हर जगह उपस्थित हैं। जो परिवार और समाज के लिए अपने योगदान के कारण बेहद उल्लेखनीय हैं। परंतु जिनकी चर्चा कहीं भी नहीं होती। इस कहानी में जैनेंद्र ने राष्ट्रीय सरोकारों के साथ सुनंदा जैसी स्त्रियों के योगदान को चित्रित किया है। समकालीन संदर्भों में स्त्री-जगत की विभिन्न विडंबनाओं, आस्थाओं और योगदानों को जैनेंद्र ने अपने कथा साहित्य में भली-भांति प्रस्तुत किया है। सार्वजनिक और निजी जीवन में विभिन्न तरह की उनकी सहभागिता और निजी जीवन में उनकी अपनी आशाएँ-आकांक्षाएँ यह सभी कुछ यथार्थ रूप में उनके साहित्य में देखने को मिलता है। कथाकार का धर्म है कि वह ऐसे सत्य को, जो मौजूद तो है, पर दिखाई नहीं देता - सबके सामने लाने की चेष्टा करे। जैनेंद्र ने समाज और व्यक्ति के मानसिक जगत को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और इस तरह के तमाम सत्य सामने लाने का काम किया। इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की एक रात और पत्नी कहानियों के माध्यम से जैनेंद्र की कहानी कला और उनकी संवेदनात्मक पहुंच का अंदाजा लगाना सहज हो सका है।

७.६ उदाहरण व्याख्या

व्याख्या-अंश 1: "देखिए नेतृत्व के मामले में गांवों को आत्म-निर्भर बनना होगा। नेताओं का भरोसा आप क्यों रखें? इस तरह सरकार हमें हरा सकती है। चुन-चुनकर कुछ आदमियों को जेल में डाल दिया और राष्ट्र की रीढ़ टूट गयी। नहीं, नहीं, प्रत्येक व्यक्ति कृत-निश्चय हो तभी तो स्वराज्य मिलेगा। नहीं तो अगर स्वराज्य मिला भी, तो जनता का स्वराज्य वह कब हुआ ? हम लोगों का आसरा अब छोड़ दीजिए। मैं आप-सा ही आदमी हूँ। दो टाँगें, दो हाथ। आप दिल में इरादा पैदा कीजिए और मुल्क के लिए रहिए, तो आपमें मुझमें क्या फर्क है ? तो यह ठीक है न ? आप मुझे छोड़ें। सब बाहरी लीडरों की आस छोड़ो। खुद लीडर बनो। आपकी तहसील का आपकी तरह मैं प्रतिनिधि हो सकता हूँ ?"

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की कहानी 'एक रात' से उद्धृत है।

प्रसंग: इस उद्धरण में कहानीकार ने जयराज के कथन के माध्यम से युगीन आवश्यकताओं की ओर ध्यान खींचा है। तत्कालीन समय में देश को जागरूक करने के प्रयास गांव-गांव चल रहे थे। किसी भी निर्णय के लिए लोग किंकर्तव्यविमूढ़ होकर नेताओं की ओर देखते थे। परंतु महात्मा गांधी इस दृष्टि से भी जन समाज को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि लोग अपने-अपने क्षेत्र के विकास कार्यों आदि को समझें और नई प्रवृत्तियों को अपनाएँ। इसी से स्वराज्य जल्दी संभव होगा। जयराज इन्हीं बातों का उल्लेख कर रहा है।

व्याख्या: 'एक रात' कहानी जब लिखी गई थी, उस समय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अपने चरम पर था। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन आदि के कारण आजादी की लहर गांव-गांव, घर-घर पहुंच चुकी थी। युवा वर्ग अपनी पढ़ाई छोड़कर और नौकरीपेशा वर्ग अपनी नौकरियां छोड़कर देश सेवा में संलग्न था। वालंटियर गांव-गांव घूमकर गांव के लोगों को स्वराज्य संबंधी बातों की जानकारी देते थे। जयराज भी पार्टी की तरफ से इसी कार्य हेतु नियुक्त था। वह आसपास के गांवों में जाकर वहां के जिम्मेदार लोगों को कार्यक्रमों की जानकारी देता था और आम जनता को अपने भाषणों के द्वारा जागरूक बनाने की चेष्टा करता था। पर यह कार्य इतना आसान नहीं था। यातायात के साधन इतनी तेज नहीं थे कि एक व्यक्ति हर जगह पहुंच सकता। इसको लेकर जयराजजैसे युवक यह सोचते थे कि सभी को मिलकर इस तरह के प्रयास करने होंगे। हर निर्णय के लिए बड़े नेताओं की ओर देखना ठीक नहीं होगा। कुछ निर्णय स्वत: भी लेने होंगे, तभी स्वराज्य की प्राप्ति संभव होगी।

विशेष: जैनेन्द्र ने तत्कालीन राष्ट्रीय उद्देश्यों को स्पष्ट किया है।

व्याख्या-अंश २: सुन रही है कि उसके पति कालिंदीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौंस उसमें बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी

कुछ देश की बात करे। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ? सोचती है, कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ?

संदर्भ प्रस्तुत: उद्धरण जैनेंद्र की प्रसिद्ध कहानी 'पत्नी' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग: इस उद्धरण में कहानी की नायिका सुनंदा के अंदर चल रही वैचारिक उथल-पुथल को दिखाया गया है। भारतीय स्त्री-वर्ग की नियति है कि उसकी सारी जिंदगी चौके में सिमट कर रह जाती है। सुनंदा भी इसका अपवाद नहीं है। वह अपने पति के साथ कदम मिलाकर सामाजिक गतिविधियों में भी हिस्सा लेना चाहती है, परंतु ऐसा संभव नहीं है । इन्हीं स्थितियों का चित्रण यहां पर किया गया है।

व्याख्या: 'पत्नी' कहानी सुनंदा और उसके पति कालिंदीचरण की स्थितियों को बयान करने वाली कहानी है। सुनंदा एक घरेलू स्त्री है, जो अपने घर के कामकाज में और कालिंदी की चिंताओं में व्यस्त रहती है। कालिंदीचरण देश उद्धार में अपने मित्रों के साथ संलग्न है। वक्त-बेवक्त घर आना, मित्रों के साथ देश-उद्धार की नई-नई योजनाएँ बनाते रहना, पार्टी संगठन के लिए काम करना - यही उनका उद्देश्य है। सुनंदा चौके में भीतर बैठे यह सारी चर्चाएं सुनती रहती है। उसको यह सबकुछ समझ में नहीं आता पर अपने पति को इन गतिविधियों में लगा हुआ देखकर वह इतना तो महसूस करती है कि कोई बहुत जरूरी बात या काम है जिसके लिए यह लोग मारे-मारे फिरते हैं। वह खुद भी इन सभी में शामिल होना चाहती है। स्थितियों-परिस्थितियों का उसे बहुत ज्यादा ज्ञान नहीं है। पर वह जानती है कि यदि पति द्वारा उसे बताया जाएगा तो वह भी उनका कुछ साथ दे सकेगी, कुछ हाथ बटा सकेगी। हमारे तत्कालीन समाज की यह विडंबना थी कि लड़कियों की शिक्षा का मतलब यह था कि बस उन्हें गृहस्थी संभालना सिखा दिया जाए। इससे आगे उनसे और अपेक्षाएं नहीं थीं। इसी पिछड़ी मानसिकता का शिकार सुनंदा भी थी। सुनंदा के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि यदि वह भी शिक्षित होती तो देशोद्धार में स्त्री-वर्ग भी कुछ सार्थक योगदान कर सकता था। हालांकि पुरुष वर्ग ने जो भी योगदान दिया, उसके पीछे स्त्रियों के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

विशेष: १. कहानीकार ने तत्कालीन समाज में स्त्री-दशा का चित्रण किया है।

७.७ वैकल्पिक प्रश्न

१. सुनंदा के पति का नाम क्या है ?

(क) रूपेश (ख) जयराज (ग) दीना (घ) कालिंदीचरण

२. कालिंदीचरण किसकी सेवा में संलग्न है ?

(क) पिता (ख) माता (ग) पत्नी (घ) देश

३. कालिंदीचरण के साथ कौन घर आया ?

(क) पिता (ख) बहन (ग) भाई (घ) मित्र

४. सुनंदा चौके में बैठी किसका इंतजार कर रही थी ?

(क) दीना (ख) सुरेश (ग) जयराज (घ) कालिंदीचरण

५. जयराज को कहां से आमंत्रण आया था ?

(क) किशनपुर (ख) रामपुर (ग) बिलासपुर (घ) हरीपुर

६. जयराज ने अजनबी आदमी से कहां का टिकट लाने की गुजारिश की ?

(क) किशनपुर (ख) रामपुर (ग) हरीपुर (घ) बिलासपुर

७. हरीपुर में जयराज से कौन मिला ?

(क) दर्शना (ख) सुनयना (ग) सुलोचना (घ) सुदर्शना

८. सभा में स्वागत गान किसके द्वारा दिया गया ?

(क) सुनयना (ख) सुलोचना (ग) दर्शना (घ) सुदर्शना

७.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. एक रात कहानी की सुदर्शना

२. जयराज का अंतर्द्वंद

३. एक रात कहानी का उद्देश्य

४. पत्नी कहानी का मूल मंतव्य

५. कालिंदीचरण के चरित्र की विशेषताएँ

६. सुनंदा का द्वंद्व

७.९ बोध प्रश्न

१. 'एक रात' कहानी के आधार पर जयराज के अंतर्द्वंद को स्पष्ट कीजिए ?

२. 'एक रात' कहानी के आधार पर सुदर्शना का चरित्र चित्रण कीजिए ?

३. 'एक रात' कहानी की संवेदना का विस्तृत विश्लेषण कीजिए ?

४. कहानी 'पत्नी' का सारांश अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए ?

५. कहानी 'पत्नी' के आधार पर सुनंदा के चरित्र का विश्लेषण कीजिए ?

६. समकालीन स्त्री जीवन के यथार्थ के संदर्भ में 'पत्नी' कहानी का मूल्यांकन कीजिए ?

*****

८

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
कहानी - पाजेब और इनाम

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ पाजेब

    ८. २.१ पाजेब कहानी : मूल संवेदना

    ८. २.२ पाजेब कहानी का विश्लेषण

८.३ इनाम

    ८.३.१ कहानी इनाम : मूल संवेदना

    ८.३.२ इनाम कहानी का विश्लेषण

८.४ सारांश

८.५ उदाहरण व्याख्या

८.६ वैकल्पिक प्रश्न

८.७ लघुत्तरीय प्रश्न

८.८ बोध प्रश्न

८.९ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

८.० इकाई का उद्देश्य

जैनेंद्र की कहानियों पर आधारित इकाई - ४ के अंतर्गत 'पाजेब' और 'इनाम' कहानियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है। जैनेंद्र विभिन्न सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याओं को एक अलग दृष्टिकोण से देखने के हामी रहे हैं। एक कहानीकार के रूप में यह उनकी विशिष्टता है कि वे समस्याओं के मनोवैज्ञानिक पक्ष को अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से उभरते और चित्रित करते हैं । 'पाजेब' और 'इनाम' दोनों कहानियाँ अलग-अलग संवेदनात्मक पृष्ठभूमि की कहानियाँ हैं। परंतु समान ढंग से दोनों कहानियों के केंद्र में बच्चों का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। 'पाजेब' कहानी जहाँ पाजेब खोने की घटना से जुड़ी हुई है और इस घटना के मद्देनजर बच्चों के व्यवहार को जैनेंद्र ने चित्रित किया है, वहीं 'इनाम' कहानी की संवेदना अत्यंत गंभीर है और ऐसी समस्याओं के बच्चों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का जैनेंद्र ने कुशलतापूर्वक चित्रण किया है । इन दोनों कहानियों के अध्ययन से हम जैनेंद्र की संवेदनात्मक परिधि और विश्लेषण क्षमता - दोनों के संदर्भ में और अधिक अनुभव हासिल करेंगे । दोनों कहानियों का विशद विश्लेषण आगे के पृष्ठों में हम देखेंगे ।

८.१ प्रस्तावना

पहले की इकाइयों में भी चर्चा कर आए हैं कि जैनेंद्र एक विशिष्ट भावबोध के साथ हिंदी कहानी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। उनके लेखन के केंद्र में व्यक्ति और समाज की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखी गई सच्चाईयाँ निहित थीं। जैनेंद्र की दृष्टि देश और राष्ट्र की अपेक्षा घर और परिवार में ज्यादा प्रखर ढंग से टिकती है। वहां के सुख-दुख और उनके पीछे निहित मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करना उनकी सर्जना की विशेषता और शक्ति रहा है। वैसे तो उनका प्रिय विषय प्रेम और दांपत्य आधारित विविध दशाएँ रही हैं, जिन पर उन्होंने प्रभूत मात्रा में कहानियों और उपन्यासों की रचना की है, परंतु जीवन के अन्य क्षेत्रों पर भी उनकी दृष्टि गई है । विशेष रुप से कुछ कहानियाँ उन्होंने बच्चों के व्यवहार को केंद्र में रखकर लिखी हैं । ऐसी ही कहानियों में 'पाजेब' और 'इनाम' कहानियाँ भी सम्मिलित हैं । यह दोनों ही कहानियाँ अलग-अलग संवेदना बोध को लेकर विकसित हुई हैं । इन कहानियों के माध्यम से जैनेंद्र की सर्जना के इस आयाम को भी देखने का प्रयास होगा । इन कहानियों में उन्होंने बाल मनोव्यवहार की विविध दशाओं को अत्यंत सफलतापूर्वक अंकित किया है । व्यवहारिक दृष्टि से देखने पर यह हमारे आपके बीच के घरों और परिवारों के बीच घटी घटना और प्रसंग की तरह दिखाई पड़ता है । जैनेंद्र की कहानियों में एक सहज प्रवाह लक्षित किया जा सकता है । उनकी कहानियाँ घटनाक्रम को बेहद प्रवाहपूर्ण ढंग से बयान करते हुए आगे बढ़ती हैं । प्रसंगों को कहीं भी बोझिल नहीं होने देती हैं । अवांतर वर्णन या विश्लेषण से वे बचते हैं । उनकी कहानियों में भाषा का सुष्ठु प्रयोग अत्यंत सार्थक ढंग से देखने को मिलता है । यथासंभव छोटे-छोटे वाक्यों में ज्यादा से ज्यादा अर्थ ध्वनित होता है । जैनेंद्र की विशेषता है कि वे कहानी कहते-कहते अत्यंत गंभीर विचार-सूत्र भी देते चलते हैं, जो कहानी समाप्त हो जाने के बाद भी पाठकों को सोचने पर विवश करते हैं, उद्वेलित करते हैं । आगे के पृष्ठों में इन कहानियों का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा।

८.२ पाजेब

८.२.१ 'पाजेब' कहानी : मूल संवेदना:

'पाजेब' कहानी जैनेंद्र की अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियों में शुमार की जाती है । जटिल बाल मनोविज्ञान के सूत्रों को समझने की दृष्टि से यह कहानी अपने आप में अनोखी कहानी है । कहानी की मुख्य संवेदना पाजेब खोने और उसके मिलने की घटना से जुड़ी हुई है और इस बीच में समस्त कार्य व्यापार को जैनेंद्र ने अत्यंत सहज तरीके से वर्णित किया है । चार वर्षीय बच्ची मुन्नी की पाजेब खो जाती है और उसे खोजने के क्रम में तमाम लोगों पर संदेह व्यक्त किया जाता है । कभी बंसी नौकर, तो कभी आशुतोष और कभी छुन्नू । और पाजेब इन में से किसी ने नहीं ली होती । इस पूरी खोजबीन की प्रक्रिया में जैनेंद्र ने आशुतोष और छुन्नू के द्वारा ऐसी समस्याओं के प्रति बच्चों की विशिष्ट सोच और व्यवहार को अत्यंत कुशलतापूर्वक वर्णित किया है । पाजेब न तो आशुतोष ने ली और न छुन्नू ने, पर ये दोनों इस पूछताछ से सकते में थे । उन्हें यह उम्मीद नहीं थी कि पाजेब के लिए इस तरह बहला-फुसलाकर उनसे पूछा जाएगा और उन्हें कठघरे में देखा जाएगा । आरंभ में वे पाजेब के बारे में कोई जानकारी होने से इंकार भी करते हैं, परंतु बार-बार पूछे जाने पर वह अलग-अलग तरह के जवाब से सभी को भटकाना शुरू कर देते हैं । आशुतोष की मन:स्थिति तो यह थी

कि उससे जिसका भी नाम लेकर पूछा जाता था कि, क्या पाजेब फलां को दी है, वह स्वीकार कर लेता था । इसी सिलसिले में उसने छुन्नू का भी नाम ले लिया। छुन्नू ने उलटकर आशुतोष पर इल्जाम पक्का कर दिया । जबकि वास्तविकता यह थी कि पाजेब बुआ के साथ ही धोखे से चली गई थी और अगली बार बुआ के आने पर वह पाजेब मिल गयी । परंतु बीच का समस्त घटनाक्रम, जहाँ एक तरफ हास्य का सृजन करता है, वहीं दूसरी तरफ बच्चों के व्यवहार के संबंध में भी विशिष्ट संकेत करता है । कहानी की मूल संवेदना बच्चों के इसी व्यवहार पर आधारित है।

८.२.२ 'पाजेब' कहानी का विश्लेषण:

पाजेब कहानी बेहद हल्की-फुल्की और भीतर तक गुदगुदा देने वाली कहानी है । मन से खेलना जैनेंद्र का सबसे प्रिय शगल है और यहीं से वे अपनी कहानियों के विषय में ढूंढकर लाते हैं । 'पाजेब' कहानी में उन्होंने एक छोटी सी घटना को जिस तरह शब्दों में गूंथा है, उससे बालमन के कई रंगों का आभास मिलता है । बच्चों का मन और प्रकृति समझ पाना भी बड़ी टेढ़ी खीर है । सीधे रास्ते को वे अपनी चंचल प्रकृति से किस ओर घुमा दें, कुछ पता नहीं चलता । यह कहानी पाजेब खो जाने की एक छोटी सी घटना से आरंभ होती है और कई मोड़ मुड़ती हुई जब अपने अंत पर पहुंचती है, तो पाठक बिना हंसे नहीं रह पाता । जैनेंद्र की प्रकृति गंभीर विषयों को उठाने और उन्हें एक नया दृष्टिकोण देने की रही है । परंतु पाजेब जैसी कहानियां लिखने में भी वे समर्थ हैं, यह सिद्ध हो जाता है। यह कहानी बच्चों के साथ-साथ बड़ों के मानसिक रीतेपन को भी स्पष्ट करती है।

चार बरस की मुन्नी पाजेब पहनने की जिद ले बैठती है । उसकी फरमाइश पर सभी उसे समझाते हैं, परंतु मुन्नी का सौभाग्य कि, घर में बुआ का आगमन होता है और अपनी वही फरमाइश वह बुआ से कहती है। बुआ उसे आश्वासन देकर जाती है कि अगले रविवार जब वह आएगी तो उसके लिए पाजेब लेकर आएगी। अगले रविवार मुन्नी की पाजेब आ जाती है और चार लड़ियों की पाजेब पहनकर मुन्नी घर-पड़ोस में इठलाती, सबको दिखाती घूमती है । अपनी सहेलियों रुकमिन, शीला सबको पाजेब दिखाई गई । कहानी में तनाव तब आरंभ होता है, जब रात में मुन्नी की मां पाजेब संभाल कर रखने के लिए मुन्नी के पैरों से पाजेब खोलती है । उसका जी धक से रह जाता है क्योंकि मुन्नी के पैर में तो एक पाजेब थी ही नहीं। बस, यहीं से कहानी का वास्तविक रस आरंभ होता है । पाजेब ढूंढने की प्रक्रिया शुरू होती है ।

मुन्नी की पाजेब आयी तो उसका भाई आशुतोष कैसे रुक जाता । उसने भी साइकिल की फरमाइश की और इस आश्वासन पर माना कि अगले जन्मदिन पर उसे साइकिल जरूर मिलेगी । बच्चों में यह प्रकृति बड़ी सामान्य सी है, एक को कुछ मिलने पर दूसरा भी उसी आशा से आशान्वित रहता है । इससे पहले कि साइकिल का कुछ होता पाजेब की समस्या खड़ी हो गई । मुन्नी के माता-पिता तरह-तरह के कयासों में डूबने-उतराने लगे । कभी उन्हें लगता कि पाजेब नौकर बंसी ने निकाली है, कभी कुछ। इस तरह तफ्तीश आरंभ हुई। पूरे घर में डटकर पाजेब खोज ली गई और अंततः नहीं मिली। संदेह की सुई आशुतोष की तरफ घूमी, कारण कि उसी शाम आशुतोष पतंग और डोर का नया बंडल लाया था और इसी पर दोषारोपण शुरू हो गया। मुन्नी की माँ ने मुन्नी के पिता से कहा, "यह तुम ही हो

जिसने पतंग की उसे इजाजत दी । बस, सारे दिन पतंग-पतंग, यह नहीं कि कभी उसे बिठाकर सबक की भी कोई बात पूछो । मैं सोचती हूँ कि एक दिन तोड़-ताड़ दूँ उसकी सब डोर और पतंग ।" अगले दिन सुबह आशुतोष से पूछताछ आरंभ हुई ।

बात आशुतोष पर आई तो पिता सोचने लगे, "मेरे मन में उस समय तरह-तरह के सिद्धांत आए । मैंने स्थिर किया कि अपराध के प्रति करुणा ही होनी चाहिए । रोष का अधिकार नहीं है । प्रेम से ही अपराध वृत्ति को जीता जा सकता है । आतंक से उसे दबाना ठीक नहीं है। बालक का स्वभाव कोमल होता है और सदा ही उससे स्नेह से व्यवहार करना चाहिए।" पर सारे सिद्धांत एक तरफ। पाजेब जब आशुतोष ने ली हो, तब तो उसके पास मिले । पूछताछ पर जैसे उसे कुछ समझ ही नहीं आया । बिना बात के ही इल्जाम पर उसे क्रोध भी आया । इस अपमान पर उसके आंसू भी भर आए । मां और पिता की पाजेब को लेकर चिंता एक तरफ और आशुतोष की मानसिक व्यथा दूसरी तरफ । मां-पिता कई तरह की आशंकाओं से भरे हुए थे । सोच रहे थे, "मुझे यह एक भारी दुर्घटना मालूम होती थी। मालूम होता था कि अगर आशुतोष ने चोरी की है तो उसका इतना दोष नहीं है; बल्कि यह हमारे ऊपर बड़ा भारी इल्जाम है । बच्चे में चोरी की आदत भयावह हो सकती है। लेकिन बच्चे के लिए वैसी लाचारी उपस्थित हो आयी, यह और भी कहीं भयावह है। यह हमारी आलोचना है। हम उस चोरी से बरी नहीं हो सकते ।" इस तरह कहानी के अलग-अलग पात्र अपने-अपने दृष्टिकोण से इस घटना को सुलझाने में लगे हुए थे। आशुतोष की मानसिक स्थिति यह थी कि उससे जो भी कहा जाता वह उसे ही स्वीकार कर लेता। पूछने पर कि 'पाजेब तुमने छून्नू को दी है न ?' उसने सिर हिला दिया और अपनी जान छुड़ाने की सोची पर अभी जान छूटनी कहां थी ? छुन्नू से पूछा गया तो वह आशुतोष से भी आगे निकला। आशुतोष के माता-पिता ने छुन्नू की मां से पूछा तो उसने अस्वीकार जाहिर किया। इस तरह पाजेब की तफ़्तीश आगे बढ़ती रही । मामला आगे बढ़ता देख छुन्नू ने एक नई कहानी गढ़ दी कि "पाजेब आशुतोष के हाथ में मैंने देखी थी और वह पतंग वाले को दे आया है। मैंने खूब देखी थी, वह चांदी की थी।"

पाजेब की चोरी में अब एक नया अभियुक्त शामिल हो गया और वह था पतंग वाला । मुन्नी की मां ने अपने पूरे तंत्र का प्रयोग करके सूचना इकट्ठी की और जब शाम को पति दफ्तर से लौटे तो बताया कि "आशुतोष ने सब बतला दिया है । ग्यारह आने पैसे में वह पाजेब, पतंग वाले को दे दी है । पैसे उसने थोड़े-थोड़े करके देने को कहे हैं । पांच आने जो दिए वह छुन्नू के पास हैं । इस तरह रत्ती-रत्ती बात उसने कह दी है ।" पाजेब की घटना अभी यहीं समाप्त नहीं हुई। कशमकश आशुतोष और अन्य लोगों के बीच चलती रही। पाजेब की इस घटना से पूरा घर अस्त-व्यस्त और सारे लोग परेशान। आशुतोष और छुन्नू, पाजेब न लेते हुए भी समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर उनसे इस कदर पूछ-ताछ क्यों हो रही है। और पूछने पर कुछ-न-कुछ कहना ही पड़ता है, सो वे सच बात कहने के बजाय भटकाते जा रहे थे । पता नहीं, शायद उन्हें ऐसा लग रहा था कि उनके सच को कोई स्वीकार नहीं करेगा कि पाजेब उन लोगों ने नहीं ली है । अंततः पाजेब मिलती है पर कहानीकार जिस ढंग से पाजेब की गुत्थी को सुलझाता है, उसमें सब ठगे से रह जाते हैं । अगली बार जब बुआ आई तो वही पाजेब ढूंढने का प्रसंग चल रहा था और आशुतोष को एक रुपये देकर पतंगवाले से पाजेब लाने की जद्दोजहद चल रही थी । आशुतोष को भेजकर जब पिताजी बुआ के पास बैठे, तब बुआ ने बात बताते हुए बास्केट की जेब में से पाजेब निकालकर सामने रख दी और बोली

कि "उस रोज भूल से यह एक पाजेब मेरे साथ ही चली गई थी ।" इस तरह पाजेब की खोज पूरी होती है । जैनेंद्र ने इस पूरी प्रक्रिया का वर्णन बेहद चुटीले ढंग से किया है ।

पाजेब कहानी बाल-मनोव्यवहार के विश्लेषण की दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय कहानी है । हिंदी में कम ही कहानीकार व्यवहार में ढली हुई पाजेब सरीखी रचनाएँ लिख सके हैं । जैनेंद्र ने इस कहानी में आशुतोष और छुन्नू आदि पात्रों के माध्यम से इस पूरी प्रक्रिया को छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से जिस तरह चुटीले अंदाज में ढाला है, वह अपने आप में अत्यंत विशिष्ट है। कहानी पढ़ते हुए आशुतोष के साथ प्रत्येक पाठक की सर्वाधिक सहानुभूति जुड़ती है। एक बालक जिसने वह कृत्य किया ही नहीं है, परंतु बार-बार उसे इस संदर्भ में पूछताछ का सामना करना पड़ता है। तो ऐसे में वह अपनी नकार के बावजूद यह समझा पाने में असफल रहता है कि पाजेब उसने नहीं ली। इसके बाद वह किस ढंग से पूरे घटनाक्रम को अलग-अलग मोड़ देता रहता है और अंत में जब वह पाजेब बुआ के पास मिलती है, तो पाठक भी हतप्रभ रह जाता है और आशुतोष का व्यवहार उसे आश्चर्यचकित कर देता है । निश्चित रूप से बाल-मनस को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से यह अत्यंत उल्लेखनीय कहानी है ।

८.२.१ इनाम कहानी : मूल संवेदना:

'इनाम' कहानी धनंजय के रूप में, समस्या विशेष के सामने एक बच्चे की सोच-समझ और प्रतिक्रिया को भली प्रकार से दर्शाने वाली कहानी है। कहानी के केंद्र में धनंजय है। धनंजय के माता-पिता के बीच संदेह के कारण सब कुछ ठीक नहीं है। इन स्थितियों में वातावरण क्लेषमय बना रहता है। धनंजय की मां को उसके पिता का एक अन्य पात्र, प्रमिला से मिलना-जुलना जरा भी नहीं भाता और इसी के चलते वह लगातार तनाव में रहती हैं। और उनका व्यवहार संयत नहीं होता। जिसका दुष्प्रभाव धनंजय को सबसे ज्यादा भोगना पड़ता है। किसी भी परिवार में इस तरह की समस्याएँ बेहद आम होती हैं। कोई भी विवाहित स्त्री अपने पति को किसी दूसरी स्त्री के साथ बोलते-हंसते देखकर सह नहीं पाती। परंतु यह संदेह सदैव सही हो, ऐसा भी नहीं है। कभी-कभी शक की बुनियाद पर व्यर्थ में ही जीवन तनावपूर्ण हो जाता है। परंतु ऐसी स्थितियों के चलते सबसे बड़ा दंड परिवार के छोटे बच्चों को भुगतना पड़ता है। समस्या उनकी समझ में नहीं आती, माता-पिता के अनावश्यक चिड़चिड़े व्यवहार का कारण उन्हें समझ में नहीं आता। परंतु धनंजय के रूप में जैनेंद्र ने एक बेहद सुलझे हुए पात्र की सृष्टि की है। सातवीं क्लास में अव्वल आने के बाद धनंजय इनाम में प्रमिला से उसके घर न आने की बात कहता है, क्योंकि वह जानता है कि समस्या का कारण वही है। उम्र कम होने के बावजूद वह जानता है कि उसकी मां का लगातार तनाव में रहना और संयत व्यवहार न करना, किस कारण से हो रहा है ? बालक उस पीड़ा से स्वयं भी मुक्त होना चाहता है और अपने परिवार को भी मुक्त करना चाहता है। जैनेंद्र ने इस कहानी में धनंजय के माध्यम से बच्चों के मनोव्यवहार को सफलतापूर्वक अंकित किया है।

८.२.२ इनाम कहानी का विश्लेषण:

जीवन की छोटी-छोटी खुशियाँ और दुख व्यक्त करने में कथाकार जैनेंद्र सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियां परिवार और पड़ोस की व्यथा-कथाएँ हैं। हमारे रोजमर्रा के जीवन में घटने वाली तमाम घटनाएँ, जिन्हें जीने के हम आदी हो जाते हैं, जैनेंद्र वहीं से अपनी

कहानियों के विषय निकाल लाते हैं। परिवार, प्रत्येक सदस्य के एक-दूसरे से समायोजन का नाम है। परिवार के भीतर रहने वाले सभी सदस्य एक-दूसरे की जरूरतों और सुख-दुख के सहभागी होते हैं, जिससे जीवन जीना बेहद आसान हो जाता है। पर कई बार छोटे-छोटे शक और संदेह परिवार के सुख को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। एक दूसरे के संबंध को उदारता की दृष्टि से देखने की आवश्यकता होती है। संकुचित दृष्टिकोण कई बार परिवार के सुख-चैन को छिन्न-भिन्न करने का कारण बन जाता है। इनाम कहानी इसी दृष्टि को सामने रखकर लिखी गई कहानी प्रतीत होती है।

सातवीं कक्षा में अव्वल स्थान पर आने की खुशी लेकर धनंजय घर वापस आता है और आते ही मां से अपनी खुशी घोषित करते हुए बताता है कि अम्मा मैं पास हो गया हूँ। अपने रोजमर्रा के कामों में व्यस्त माँ उसकी बात को आए-गए तरीके से सुनकर चिंता व्यक्त करते हुए उलाहना देती है, "कुछ खा ले सवेरे ही चला गया बिना कुछ खाए पिए सुना ही नहीं हां तो अब आया है ९:०० बजे।" धनंजय के लिए यह बड़ी खुशी थी और वह यह खुशी अपने पिता से भी बांटना चाहता था। पर पिता आज दफ्तर कुछ जल्दी निकल गए। धनंजय की मां इन खुशियों में खुश नहीं है, ऐसा नहीं था, पर उसके भीतर एक गहन उदासी है और इस उदासी का प्रभाव पूरे परिवार पर छाया हुआ है। धनंजय इसे भली-भांति महसूस करता है। उसकी मां की उदासी का कारण प्रमिला है। मां को प्रमिला और धनंजय के पिता का मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता। इस मिलने-जुलने से उसे अपनी गृहस्थी पर आँच आती महसूस होती है। और यह खटक चौबीस घंटे मां के भीतर चलती रहती है। इसी कारण वह हमेशा गुस्से में रहती है और धनंजय मां के इस चिड़चिड़े व्यवहार के कारण हमेशा सतर्क स्थिति में रहता है। वैसे इस तरीके से कोई बात नहीं कह पाता। पिता के साथ संबंधों में वह जितनी सहजता महसूस करता है, उतनी मां से नहीं। धनंजय की उम्र बेपरवाह खेलने-कूदने की है , पर वह अपनी उम्र से कुछ ज्यादा ही समझदार है और मां की तकलीफ से वाकिफ है। वह चाहता है कि यह तकलीफ जितनी जल्दी-से-जल्दी हो सके, दूर हो। घर के कलहपूर्ण वातावरण ने उसके भीतर की चंचलता को जैसे क्षीण कर दिया है और उसमें अजीब सी उम्र से बड़ी समझ पैदा हो गई है। मां भी धनंजय के व्यवहार से ऐसा ही महसूस करती है, "यह लड़का उसकी समझ से बाहर हुआ जा रहा है। कभी लड़के जैसा रहता ही नहीं, मानो एकदम सयाना-बुजुर्ग हो। तब वह डर आती है, जैसे अपने पर पछतावा हो। और उस समय उस बुजुर्ग से बात छेड़ने का कोई उपाय भी नहीं रह जाता। उसमें सहसा मातृ-भावना उमड़ती है। पर उसे प्रकाशन का कोई अवकाश नहीं मिल पाता। परिणामतः उठी सहानुभूति रोष बन आती है।"

सातवें दर्जे में अव्वल आना धनंजय के लिए एक बड़ी खुशी है और यह खुशी पिता के लिए भी उतनी ही बड़ी है। निश्चित रूप से माँ भी बहुत खुश है परंतु उसकी संकुचित सोच के चलते जो एक उदासी उसने अपने चारों तरफ ओढ़ रखी है, यह खुशी उस उदासी में कहीं समा गई है। धनंजय पास होने की खुशी बांटने के लिए प्रमिला के पास जाना चाहता है, पर मां उसे अनुमति नहीं देती। मां जानती है कि यदि यह बाहर जाएगा तो प्रमिला के पास जरूर जाएगा। बालक पिताजी के कहे अनुसार अव्वल आने की मिठाई सबको खिलाना चाहता है, पर माँ की अनुमति नहीं है। पिता का नाम लेने पर माँ और चिढ़ती है और कहती है, "पिताजी ने कहा था। आए बड़े पिताजी ! मिठाई खिलाएंगे ! घरवालों को पहले रोटी तो खिला लें। यों बस लुटाना आता है ! नहीं, कोई नहीं। बैठ यहीं कोने में और अपना काम

देख ।" मां और पिता के द्वन्द्व में धनंजय की स्थिति कुछ ठीक नहीं है । हमेशा परिवार में पति-पत्नी, दो पहियों के समान होते हैं । यदि यह संतुलित होते हैं तो परिवार में सबकुछ ठीक स्थिति में रहता है, परंतु इनके तालमेल में गड़बड़ी आने पर परिवार में सब कुछ बाधित होता है । इस बाधा का फर्क आखिरकार सब पर पड़ता है । धनंजय भी इसका अपवाद नहीं था । घर के तनावपूर्ण वातावरण का प्रभाव उस पर भी पड़ रहा था । मां की स्थिति भी अजब थी, बेटे पर उसे गर्व था पर पिता से उतनी ही चिढ़ । पता नहीं, उसके संदेह में कितनी सच्चाई थी । पर उस संदेह की वजह से परिवार का सुख-चैन किस कदर प्रभावित होता है । यह कहानीकर ने भली-भांति चित्रित किया है ।

भारतीय गृहिणी की कमोबेश यही स्थिति है । घर गृहस्थी के तनाव अपनी जगह और शक की प्रवृत्ति की वजह से पैदा हुए इस तरह के तनाव दूसरी तरफ और इनके बीच में पिसती वह गृहिणी । पति पर तो उसका वश नहीं चलता पर अन्य दूसरों पर यह सारा तनाव बह-बहकर निकलता है । धनंजय बार-बार बाहर जाकर मिठाई खिलाने की जिद करता है और मां स्पष्ट रूप से पूछती है कि वहीं जा रहा था न, मतलब प्रमिला के पास और जब धनंजय सच बोलता है तो खासी मरम्मत भी होती है । मां की मानसिक दशा यह है कि, "सोचने लगी कि यही उसका भाग्य है । घर में एक वह है और उसका काम । काम की एक संगी है । एक रोज इसी में मर जाना है । बाकी तो सब बैरी हैं । मुझे तो मौत आ जाए तो भला ! एक वह हैं कि सवेरे छाता उठाया और चल दिए और शाम को आए कि सब किया मिले । एक मैं करूं और मैं ही मरूँ । और मरने को मैं, मौज करने को चाहे कोई दूसरी..... और एक यह है कमबख्त । मुझे तो गिनता ही नहीं, बस सदा उनके कहने में । घर क्या जेल है ? एक उसने बांध रखा है । नहीं तो जहां होती चली जाती, मगर यहां का मुंह न देखती, न दाना लेती न पानी । पर यह छोकरा ऐसा बेहया है कि..." इस तरह मां के क्रोध का शिकार धनंजय होता है बालक निश्चित रूप से घर की असहज स्थितियों को देखकर तनाव महसूस करता है शान होती है पिता आते हैं और थोड़ी देर बाद पीछे पीछे घर में प्रमिला का भी आगमन होता है

प्रमिला मिठाई के साथ घर में आती है । प्रमिला के पिता भी घर के वातावरण से परिचित हैं। रोज-रोज के तनाव से परिचित हैं । प्रमिला के आने पर उन्हें संकोच हो आता है और धनंजय की मां भी भीतर से एक-एक खबर लेने के प्रयास में लगी रहती है । प्रमिला के पूछने पर कि बता और क्या इनाम लेगा ? धनंजय उससे पूछता है, "मांगूंगा तो दोगी ?" प्रमिला के आश्वासन देने पर वह बोला, "देखो टालना मत । मेरा इनाम यह है कि इस घर में तुम अब से कभी न आना । तुम मुझे प्यार करती हो न ?" धनंजय की इस मांग पर सब असहज हो जाते हैं । धनंजय अपने पिता से भी यही चाहता है कि वह प्रमिला से कभी न मिलें और इससे पहले की प्रमिला और धनंजय के पिता कुछ समझ पाते, यह बात सुनकर जैसे उसकी मां के मन का सारा मैल धुल जाता है । स्थिति को संभालते हुए वह अपने भावों को छुपाते हुए प्रमिला से कहती है कि "बड़े दिनों में आयी हो । बैठो, तुम भी चखो न यह खुशी की मिठाई!" और इस तरह परिवार पर छाया हुआ अवसाद छँट जाता है ।

इस तरह जैनेंद्र ने 'इनाम' कहानी में, घर के नकारात्मक वातावरण का एक बच्चे की मनोदशा पर क्या असर पड़ता है, इसका सार्थक चित्रण किया है । इनाम कहानी का विषय, हर घर, गली और पड़ोस का हो सकता है । जैनेंद्र की विशिष्टता अपने समय में इस बात को लेकर उल्लेखनीय है कि उस दौर में जब कहानी की संवेदना समाज और व्यापक राष्ट्रीय

उद्देश्यों के साथ जुड़ी हुई थी, जैनेंद्र की दृष्टि ऐसे विषयों की ओर गयी जो व्यक्ति और परिवार की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण थे। उनको सामने लाना भी साहित्य की ही जिम्मेदारी थी। जैनेंद्र ने विषय नवीनता के कारण ऐसे विषयों का चयन नहीं किया बल्कि उनकी स्वाभाविक रूचि इस ओर थी। व्यक्ति के मनोजगत का विश्लेषण उनका प्रिय शगल था और इसीलिए उन्होंने अलग-अलग संवेदनात्मक पहलुओं को उठाकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका विश्लेषण साहित्य में उपस्थित किया। जैनेंद्र के सृजन से, हिंदी साहित्य को एक नई धारा और चिंतन की एक सर्वथा नवीन दृष्टि मिली।

८.४ सारांश

इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की दो अत्यंत विशिष्ट कहानियों 'पाजेब' और 'इनाम' का अध्ययन किया गया है। जैनेंद्र की खास रूचि विभिन्न घटनाओं और समस्याओं के मनोवैज्ञानिक कारणों और प्रभावों को चित्रित करने में रमती है। 'पाजेब' कहानी, पाजेब खो जाने और उसके ढूंढने की प्रक्रिया पर आधारित कहानी है। अपने सरल, स्फूर्त हास्य के चलते यह कहानी अत्यंत रुचिकर बन जाती है। कहानी में पाजेब के खोने और उसके मिलने के बीच के घटनाक्रम के माध्यम से जैनेंद्र ने बाल मनोविज्ञान की विशिष्ट दशाओं का उद्घाटन किया है।

पाजेब खोई नहीं थी बल्कि वह धोखे से अनायास ही बुआ के साथ वापस चली गई थी, जिसे अगले हफ्ते आने पर बुआ साथ लेकर आती है और वापस कर देती है। परंतु इस बीच पाजेब ढूंढने के क्रम में आशुतोष, छुन्नू आदि पात्रों के साथ जो कशमकश और जद्दोजहद चलती है, उससे बालकों की विशिष्ट मनोदशा को जैनेंद्र ने चित्रित किया है। पाजेब न लिए होने के बावजूद, इनकार किए जाने के बावजूद, आशुतोष से बार-बार बहला-फुसलाकर यह आग्रह किया जाता है, कि पाजेब उसने ली है और वह बता दे कि वह पाजेब उसने किसे दे दी या उसका क्या किया ? आशुतोष समझ नहीं पाता कि वह इस बार-बार के दबाव पर क्या उत्तर दे। पहले तो वह इंकार करता है। फिर जब ज्यादा पूछताछ होती है तो वह छुन्नू का नाम ले लेता है। घर के सारे लोगों का ध्यान छुन्नू की ओर केंद्रित हो जाता है। वहां भी वही दशा होती है। छुन्नू भी मनगढ़ंत तरीके से यहां-वहां के उत्तर देकर बहलाता रहता है। वास्तव में दोनों दोस्तों को ही नहीं पता की पाजेब कहां है। हैरानी और परेशानी से बचने के लिए वे नए-नए तर्क गढ़ते हैं और फिर उन्हीं में फंसते चले जाते हैं। अपने भोलेपन के कारण वे बेचारे अपनी बात समझा पाने में अक्षम रहते हैं और अंत में जब पाजेब बुआ के पास मिलती है, तो माता पिता ठगे से खड़े रह जाते हैं। क्या प्रतिक्रिया दें, यह भी नहीं समझ पाते हैं। बच्चों के इस विचित्र व्यवहार को कहानी ने अत्यंत तर्कसंगत ढंग से चित्रित किया है। बच्चे क्या सोचते हैं ? क्या समझते हैं ? यह जान पाना बड़ा मुश्किल है। पर अपने सरल भावबोध से वे गलत कार्यों की ओर प्रेरित नहीं होते। यह कहानी एक विशिष्ट स्थिति को बड़े ही सहज और स्फूर्तिपरक ढंग से चित्रित कर सकी है।

'इनाम' कहानी धनंजय और पारिवारिक वातावरण पर आधारित कहानी है। परिवार में जो समस्याएँ होती हैं, उनका प्रभाव किस तरह बालकों पर पड़ता है, इसका अच्छा चित्रण इस कहानी में किया गया है। धनंजय एक अच्छा बालक है। पढ़ने-लिखने में भी काफी होशियार है। बेहद संयत है। माता-पिता दोनों से उसे काफी स्नेह मिलता है। परंतु अपने घर की एक

व्यर्थ की समस्या के कारण उस पर भी व्यर्थ दुष्प्रभाव पड़ता है। धनंजय की मां को धनंजय के पिता का प्रमिला के साथ उठना बैठना पसंद नहीं है और न ही वह चाहती है कि प्रमिला उसके घर आए। धनंजय की मां का यह संदेह कितना सही है, या गलत है, यह बात तो कहानी में उतनी स्पष्ट नहीं है परंतु इस संदेह के कारण परिवार का वातावरण किस कदर तनावमय और अवसादमय होता है, यह इस कहानी में चित्रित है। और इस वातावरण का प्रभाव घर के प्रत्येक सदस्य पर पड़ता है।

बच्चे बेहद संवेदनशील होते हैं। भले ही वे जाहिर न करते हों, परंतु घर की हर छोटी-बड़ी बात को भाँप लेने में वे सक्षम होते हैं और उन पर इन समस्याओं का सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। धनंजय भीतर-ही-भीतर इन स्थितियों के कारण व्यथित रहता है। वह अपनी मां या पिताजी से कुछ भी नहीं कहता। पर इस वातावरण के चलते एक घुटन लगातार उसके भीतर बनी रहती है। सातवीं कक्षा में अव्वल आने की खुशी भी इस वातावरण की भेंट चढ़ रही होती है। इतनी छोटी उम्र में होने के बावजूद धनंजय समझता है कि कलह का कारण क्या है ? और बातें वह समझता है या नहीं समझता, नहीं कह सकते, परंतु वह यह जानता है कि मां की व्यथा का कारण प्रमिला है और वह किसी भी सूरत में यह चाहता है कि मां और पिता दोनों का प्यार उसे बराबर से मिले। उनके द्वन्द्व और संघर्ष का वह खात्मा करना चाहता है। इतने छोटे बच्चे में ऐसी भावना होती ही है। उसके लिए दोनों ही आवश्यक होते हैं। इसीलिए जब इनाम की बारी आती है, और प्रमिला उससे पूछती है, तो वह इनाम में प्रमिला के घर न आने की बात कहता है और यही अपेक्षा उसे अपने पिता से भी है कि वे प्रमिला से न मिलें। यद्यपि कहानी के अंत में जैनेंद्र अत्यंत सुलझे हुए ढंग से कहानी को समापन की ओर ले गए हैं, परंतु यह कहानी ऐसी समस्याओं के प्रति बच्चों पर पड़ने वाले नकारात्मक असर और प्रभाव को महत्वपूर्ण ढंग से चित्रित करती है।

८.५ उदाहरण व्याख्या

व्याख्या-अंश १: मैं कुछ बोला नहीं। मेरा मन जाने कैसे गंभीर प्रेम के भाव से आशुतोष के प्रति उमड़ रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि ठीक इस समय आशुतोष को हमें अपनी सहानुभूति से वंचित नहीं करना चाहिए। बल्कि कुछ अतिरिक्त स्नेह इस समय बालक को मिलना चाहिए। मुझे यह एक भारी दुर्घटना मालूम होती थी। मालूम होता था कि अगर आशुतोष ने चोरी की है तो उसका इतना दोष नहीं है; बल्कि यह हमारे ऊपर बड़ा भारी इल्जाम है। बच्चे में चोरी की आदत भयावह हो सकती है। लेकिन बच्चे के लिए वैसी लाचारी उपस्थित हो आयी, यह और भी कहीं भयावह है। यह हमारी आलोचना है। हम उस चोरी से बरी नहीं हो सकते।

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की प्रसिद्ध कहानी 'पाजेब' से लिया गया है।

प्रसंग: 'पाजेब' कहानी एक पाजेब के खो जाने और फिर उसे खोजने की प्रक्रिया से गुजरने की कहानी है। इस प्रक्रिया में बच्चों के मनोव्यवहार का अच्छा विश्लेषण जैनेंद्र के द्वारा किया गया है। पाजेब खोजने के दौरान ही माता-पिता को अपने पुत्र आशुतोष पर संदेह होता है कि, हो-न-हो यह पाजेब इसी के द्वारा ले ली गई है। ऐसे में वे उस छोटे बालक पर

क्रोधित होने के बजाय इस सोच में पड़ जाते हैं कि यदि पाजेब इसने ली भी है, तो कहीं-न-कहीं वे भी इसके लिए जिम्मेदार हैं । इन्हीं समस्त संदर्भों का उल्लेख इस उद्धरण के अंतर्गत किया गया है।

व्याख्या: कहानी 'पाजेब', पाजेब खो जाने की घटना का एक मनोरंजक आख्यान है । पर इस मनोरंजन के पीछे कहानी में कई मार्मिक स्थल हैं । इन्हीं में से एक स्थल है जिसमें आशुतोष पर संदेह की स्थिति पैदा हो जाती है । और भरसक प्रयास किया जाता है कि पाजेब के बारे में वह कोई बात बता दे। परंतु समस्या यह थी कि पाजेब आशुतोष के द्वारा नहीं ली गई थी और इसीलिए वह ठीक-ठीक कुछ बोल नहीं रहा था। बल्कि किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में वह परिस्थिति को समझ ही नहीं पा रहा था। कई बार उसे खुद पर क्रोध आता या वह चुप हो जाता या फिर उससे अगर किसी का नाम लेकर पूछा जाता कि क्या तुमने फलां को पाजेब दे दी है, तो वह उसे भी स्वीकार कर लेता। उसकी स्थिति अजीब सी हो गई थी। वह बहुत अनमना सा रहने लगा था। ऐसी स्थिति में आशुतोष के पिता यह विचार करते हैं कि पाजेब ले ली, यह तो ठीक है परंतु ऐसी परिस्थितियां कैसे पैदा हो गई कि उसे पाजेब लेनी पड़ गई। इससे उन्हें स्वयं शर्मिंदगी महसूस होती है। वह इसके लिए अपने को जिम्मेदार समझते हैं। उन्हें लगता है कि हमारे पालन पोषण में आखिर ऐसी क्या कमी रह गई थी कि आशुतोष को ऐसा कदम उठाना पड़ गया। आशुतोष की उम्र बहुत कम थी, ऐसे में उसके पिता को पाजेब खोने का अफसोस तो था पर उससे ज्यादा अफसोस आशुतोष की स्थिति को देखकर हो रहा था। बच्चे दुर्भावना से इस तरह के कृत्य नहीं करते पर अपने खेलकूद और चंचलता के चलते कभी-कभी ऐसा कर देते हैं। पर यहां तो स्थिति बिल्कुल अलग थी। अंत में जब पाजेब के असली रहस्य का पता चलता है तो आशुतोष के पिता को निश्चित रूप से अफसोस हुआ होगा, जो इतने दिन तक आशुतोष को संदेह के घेरे में लिया गया। उन्हें सहज ही उस बालक की मानसिक स्थिति का अंदाजा हो गया होगा। पाजेब कहानी में जैनेंद्र ने मुख्य रूप से आशुतोष के माध्यम से ही बच्चों के मन का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या-अंश २: सोचने लगी कि यही उसका भाग्य है। घर में एक वह है और उसका काम। काम ही एक संगी है। एक रोज इसी में मर जाना है। बाकी तो सब बैरी हैं। मुझे तो मौत आ जाए तो भला ! एक वह हैं कि सवेरे छाता उठाया और चल दिए और शाम को आए कि सब किया मिले । एक मैं करूँ और मैं ही मरूँ । और मरने को मैं, मौज करने को चाहे कोई दूसरी........ और एक यह है कमबख्त ! मुझे तो गिनता ही नहीं, बस सदा उनके कहने में। घर क्या जेल है ? एक उसने बांध रखा है । नहीं तो जहाँ होती चली जाती, मगर यहाँ का मुँह न देखती, न दाना लेती न पानी। पर यह छोकरा ऐसा बेहया है कि....

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की प्रसिद्ध कहानी 'इनाम' से उद्धृत है।

प्रसंग: 'इनाम' कहानी का मुख्य पात्र धनंजय है । धनंजय की मां घर के तनाव और जिम्मेदारियों के कारण तंग रहती है और इस बीच धनंजय भी अपने संयत स्वभाव के बावजूद कभी-कभी उनके तनाव का शिकार हो जाता है। ऐसे में माँ सारी तकलीफें एक-एक करके सुनाती जाती है और धनंजय को कोसती जाती हैं। ऐसे ही एक अवसर पर धनंजय की मां घर के कामकाज और पिता आदि पर क्रोधित हो रही हैं।

व्याख्या: इनाम कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसमें माता-पिता के अतिरिक्त एक बालक धनंजय है। धनंजय पढ़ने लिखने में अत्यंत प्रखर है। सातवीं कक्षा में अव्वल आया है और यह खुशखबरी वह सबसे पहले अपनी मां को सुनाता है। धनंजय के घर का वातावरण कुछ क्लेषमय है। धनंजय की मां अपने कुछ संदेहों के चलते तनाव में रहती है और इसका दुष्प्रभाव धनंजय पर भी पड़ता है। धनंजय की मां को ऐसा लगता है कि उसके पिता प्रमिला को पसंद करते हैं और इसके चलते उसे बुरा महसूस होता है। इन परिस्थितियों में वह तनाव महसूस करती है और इस तनाव का फल अंततः चिड़चिड़ाहट में बदल जाता है। जिसका दुष्प्रभाव धनंजय को सहन करना पड़ता है। परिवार का ऐसा वातावरण देखकर वह स्वयं भी अन्यमनस्क रहता है। खुलकर अपनी बात नहीं कहता। पिता से वह ज्यादा निकटता महसूस करता है। इतनी कम उम्र में ही वह मां की परेशानी को भलीभांति लक्षित करता है। उसकी मां जब तनाव में होती है तो वह घर-गृहस्ती की तमाम शिकायतों के साथ-साथ और भी भला बुरा कहती है। यद्यपि धनंजय से उसे बेहद स्नेह है और ऐसा लगता है जैसे धनंजय के कारण ही वह थमी हुई है। आवश्यक नहीं कि यह संदेह ठीक ही हो, परंतु जो भी हो, धनंजय इन स्थितियों से बेहद प्रभावित होता है। अंत में यह शक निराधार ही निकलता है। परंतु ऐसी स्थितियों का सृजन करके जैनेंद्र बाल मन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति सचेत करते हैं।

८.६ वैकल्पिक प्रश्न

१. धनंजय किसे घर न आने के लिए कहता है ?

(क) प्रभा (ख) विमला

(ग) कमला (घ) प्रमिला

२. धनंजय की मां धनंजय को कितने रुपए देती है ?

(क) २ (ख) ३

(ग) ४ (घ) ५

३. इनाम कहानी का मुख्य पात्र निम्न में से कौन है ?

(क) सुदर्शना (ख) सुनैना

(ग) प्रमिला (घ) धनंजय

४. बुआ किसके लिए पाजेब लेकर आई थी ?

(क) रुक्मिन(ख) शीला

(ग) प्रभा (घ) मुन्नी

५. आशुतोष ने बुआ से क्या मांगा ?

(क) आइसक्रीम (ख) बॉल

(ग) पतंग (घ) साइकल

६. खोई हुई पाजेब अंत में किसके पास मिलती है ?

(क) पतंगवाला (ख) प्रकाश

(ग) छुन्नू (घ) बुआ

७. सातवीं कक्षा में कौन अव्वल स्थान पर आया था ?

(क) छुन्नू (ख) आशुतोष

(ग) प्रकाश (घ) धनंजय

८. आशुतोष को किसके साथ पतंगवाले के यहां भेजा जाता है ?

(क) धनंजय (ख) बुआ

(ग) छुन्नू (घ) प्रकाश

८.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. पाजेब कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए ?

२. पाजेब कहानी का मूल मंतव्य स्पष्ट कीजिए ?

३. इनाम कहानी का मूल मंतव्य स्पष्ट कीजिए ?

४. इनाम कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए ?

८.८ बोध प्रश्न

१. पाजेब कहानी के आधार पर बालकों की मनोवृत्ति का विश्लेषण कीजिए ?

२. पाजेब कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?

३. इनाम कहानी के आधार पर धनंजय के चरित्र का विश्लेषण कीजिए ?

४. इनाम कहानी की मूल संवेदना का विस्तृत वर्णन कीजिए ?

*****

९

जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
कहानी - जाह्नवी और बाहुबली

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य

९.१ प्रस्तावना

९.२ जाह्नवी

 ९.२.१ जाह्नवी : मूल संवेदना

 ९.२.२ जाह्नवी : विश्लेषण

९.३ बाहुबली

 ९.३.१ बाहुबली : मूल संवेदना

 ९.३.२ बाहुबली : विश्लेषण

९.४ सारांश

९.५ उदाहरण व्याख्या

९.६ वैकल्पिक प्रश्न

९.७ लघुत्तरीय प्रश्न

९.८ बोध प्रश्न

९.० इकाई का उद्देश्य

जैनेंद्र की कहानियों पर आधारित इकाई-५ के अंतर्गत जैनेंद्र की दो कहानियों 'जाह्नवी' और 'बाहुबली' का अध्ययन किया जाएगा। जाह्नवी, प्रेम जैसे भाव पर आधारित कहानी है। प्रेम और दांपत्य संबंधों की जटिलताएँ और विडम्बनाएँ जैनेंद्र के प्रिय विषय रहे हैं। जैनेंद्र ने इन विषयों से संबंधित जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें उन्होंने वाह्य सामाजिक पक्ष को देखने के बजाय व्यक्ति के अंतर्मन की थाह को लेने का प्रयास किया है। अपने इन भावों के संदर्भ में व्यक्ति की अपनी मन:स्थिति क्या होती है ? उसको अपनी कहानियों में उन्होंने चित्रित करने का प्रयास किया है। जाह्नवी में प्रेम की अभिव्यक्ति और पीर की अद्भुत अभिव्यंजना उनके द्वारा की गई है। इसी प्रकार 'बाहुबली' कहानी विचार-प्रधान कहानी है। जैनेंद्र कथाकार होने के साथ-साथ एक चिंतक भी थे। जीवन के संबंध में एक विशिष्ट दृष्टि का अनुसरण उनके पूरे कथा-साहित्य में मिलता है। बाहुबली कहानी मनुष्य के जीवन-प्रवाह को एक दिशा सूचित करने वाली कहानी है। अपनी विचार प्रधानता के चलते यह कहानी जैनेंद्र की स्वाभाविक रुचिपूर्ण संवेदना से अलग कहानी ठहरती है। इसके अध्ययन से जैनेंद्र के कहानीकार रूप का एक नया दर्शन मिलता है।

९.१ प्रस्तावना

अभी तक आप पिछली चार इकाइयों में जैनेंद्र की आठ कहानियों का अध्ययन कर चुके हैं। ये सभी कहानियाँ जीवन के अलग-अलग पक्षों को अभिव्यक्त करने वाली कहानियाँ हैं। बदलते समय संदर्भों को जैनेंद्र ने अपनी कहानियों के पात्रों के द्वारा अभिव्यक्ति दी है। यह संदर्भ जितना वैयक्तिक जीवन को प्रभावित करते हैं, उतना ही सामाजिक जीवन को भी आंदोलित करते हैं। जैनेंद्र के समय में इस तरह से विषय संवेदना को प्रस्तुत करने की शक्ति एक अकेले उन्हीं में थी। उन्होंने व्यक्ति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना। परिवर्तन को दृष्टिगोचर करने के लिए व्यक्ति के भीतर निहित सच्चाईयों को उन्होंने महत्वपूर्ण माना और वर्जित माने जाने वाले विषयों को भी उन्होंने नितांत व्यक्तिगत सच्चाइयों के रूप में अपनी कहानियों में चित्रित किया। इस अंतिम इकाई में जैनेंद्र की 'जाह्नवी' और 'बाहुबली' कहानियाँ सम्मिलित हैं। दोनों ही कहानियाँ भिन्न कलेवर की कहानियाँ हैं। जाह्नवी प्रेम के एक नए रूप को नई संवेदना के साथ प्रस्तुत करने वाली कहानी है, जिसमें जाह्नवी के रूप में प्रेम-पीर की अभिव्यक्ति सर्वथा नए रूप के साथ उन्होंने प्रस्तुत की है। वहीं दूसरी तरफ बाहुबली कहानी में उन्होंने व्यापक जीवन-दर्शन को समाविष्ट किया है।

९.१ जाह्नवी

९.१.१ जाह्नवी : मूल संवेदना:

'प्रेम' मानव जीवन का सबसे कल्याणकारी भाव है और इसका एक रूप स्त्रीपुरुष संबंधों - को निर्धारित करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामाजिक शक्तियों और परंपराओं ने इस रूप के लिए कुछ नियम आदि तय कर रखे हैं और इन नियमों की अवहेलना पर पूरे मानव इतिहास में दुष्परिणामों की अनेक कहानियाँ भी देखने को मिलती हैं। मानव सभ्यता के आरंभ से ही यह स्थिति देखने को मिलती है और सभ्यता के विकास के साथ इसके अलग अलग रूप और परिणाम-भी देखने को मिलते हैं। पर मूल में प्रेम का भाव ही है। हिंदी के आधुनिक कहानीकारों में जैनेंद्र ने अपने समय-संदर्भों के अनुरूप इस भाव को लेकर कई रचनाएँ लिखी हैं। जाह्नवी भी ऐसी ही एक कहानी है, जिसमें जैनेंद्र ने जाह्नवी के माध्यम से प्रेम की नैसर्गिक अभिव्यक्ति को शब्दों में बांधने का प्रयास किया है।

९.१.२ जाह्नवी : विश्लेषण:

प्रेम और दांपत्य के संबंधों को नवीन यथार्थवादी दृष्टि से देखने में सिद्धहस्त माने जाने वाले कथाकार जैनेंद्र की कहानी 'जाह्नवी' एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो विडंबनात्मक परिस्थितियों के साथ स्वयं में अकेली है और यह कहानी उस अकेलेपन में डूबी हुई जाह्नवी के अंतर्मन की टटोल करती हुई कहानी है। जैनेंद्र की संवेदना पर गोविंद मिश्र लिखते हैं, "जैनेंद्र अपने को घर की समस्याओं तक सीमित रखते हैं तो बड़ी सामाजिक, राजनीतिक समस्याएँ उनसे छूट गई हैं। उनके यहां विविध खेमे के चरित्र नहीं, बच्चे-बूढ़े तो करीब-करीब नदारद हैं, स्त्री भी ज्यादातर या पत्नी है या प्रेयसी है। बहन, स्त्री, मां के रूप उनके यहां नहीं है।" और ऐसा संभव इसलिए है, क्योंकि साधारण रिश्ते तो अपनी मर्यादा और सामाजिक मान्यताओं के अनुसार चल ही रहे थे। परंतु व्यक्तिगत जीवन में जो कई तरह के

द्वन्द्व उपस्थित हो रहे थे, उनको अपनी आंतरिकता के साथ चित्रित करना, जैनेंद्र इस जिम्मेदारी को समझ रहे थे। इन विषयों के प्रति लेखन में एक रिस्क भी था, लेखकीय अस्वीकार्यता का, जो उन्होंने उठाया। सर्वथा नवीन दृष्टि से देखने के कारण कहीं-कहीं विचार प्रधानता भी देखने को मिलती है। वे मानते थे कि मनुष्य के अंतर जगत में घटने वाला सत्य काफी विशाल है और इसको चित्रित करने की आवश्यकता भी है। यदि मनुष्य के जीवन की वास्तविक समस्याओं को समझना है, तो उनके अंतर जगत में उतरना ही होगा। जाह्नवी कहानी भी स्त्रियों के अंतर्मन को उस परंपरागत युग में एक नई दृष्टि से देखने की पहल है।

अपने में खोई सी रहने वाली जाह्नवी के जीवन में एक खालीपन है, जिसे वह पक्षियों से भरती है, जिसे वह अकेले में गीतों को गा-गाकर भरती है। पर यह अकेलापन क्यों है ? कहानी संकेत करती है कि जाह्नवी पढ़ी-लिखी युवती है और किसी युवक से प्रेम भी करती है। कहानीकार ने कहानी की संवेदना के अनुसार इस जानकारी को यहीं तक सीमित रखा है। परंतु समाज में तो प्रेम निषिद्ध है। और इसी के चलते शायद वह अपने में सिमटकर रह गई है। किशोरावस्था में प्रेम जैसी प्रवृत्ति के दायरे में आ जाना कोई खास बात नहीं है, पर समाज में उसे जिस दृष्टि से देखा जाता है, वह दृष्टि यहां प्रश्नों के दायरे में है। जाह्नवी बेहद ईमानदार है। वह अपने प्रेम को छुपाती नहीं है, न ही वह इसके माध्यम से किसी को धोखे में रखती। ऐसा संकेत मिलता है कि संभवतः सामाजिक अवमानना के डर से उसके माता-पिता भी इस पहलू पर उसका साथ नहीं दे रहे। जिससे एक अजीब-सा रीतापन उसके जीवन में आ गया है। वह अपने मे खोयी रहती है। अकेलापन और कौए उसके साथी हैं। यह सभी कुछ उसकी भंगिमाओं से दिखता है, "थोड़ी देर बाद उसने मानो जागकर अपने आस-पास के जगत को देखा। इसी की राह में क्या मेरी ओर भी देखा ? देखा भी हो, पर शायद मैं उसे नहीं दीखा था। उसके देखने में सचमुच कुछ दीखता ही था, यह मैं कह नहीं सकता। पर कुछ ही पल के अनंतर वह मानों वर्तमान के प्रति, वास्तविकता के प्रति चेतन हो आयी।"

उसके जीवन में सम्मिलित हो गयी इस नई परिस्थिति के कारण वह अपनी भावनाओं को कौओं के माध्यम से व्यक्त करती है। उसके प्रेम की पीर का वर्णन करने के लिए कहानीकार ने कौवे को उस सहारे के रूप में प्रस्तुत किया है। वह इन पक्षियों को भोजन कराती है। अपने खालीपन और सूनेपन को इनके माध्यम से काटने का प्रयास करती है और साथ में एक गीत भी जाती जाती है, जो उसकी प्रेम-पीर का बयान करता है, "कागा चुन-चुन खाइयो.... । दो नैना मत खाइयोपीउ मिलन की आस ....मत खाइयो , ।" जैनेंद्र ने बेहद भावुक और काव्यात्मक लहजे में जानवी के साथ इस स्थिति का वर्णन किया है यह कुछ-कुछ जायसी काव्य की कल्पना जैसा वर्णन हो जाता है जानवी के इस गीत की से उसकी विकलता का अंदाजा लगाया जा सकता है, "वह खुश है कि कौए आ गए हैं और वे खा रहे हैं। पर एक बात है कि ओ कौओ, जो तन चुन-चुनकर खा लिया जाएगा, उसको खा लेने में मेरी अनुमति है। वह खा-खूकर तुम सब निबटा देना। लेकिन ऐ मेरे भाई कौओ ! इन दो नैनो को छोड़ देना। इन्हें कहीं मत खा लेना। क्या तुम नहीं जानते कि उन नैनों में एक आस बसी है जो पराये के बस है। वे नैना पीउ की बाट में हैं। ऐ कौओ, वे मेरे नहीं हैं, मेरे तन के नहीं है। वे पीउ की आस को बसाये रखने के लिए हैं। सो, उन्हें छोड़ देना।" यह भावनामय और काव्यमय शैली, जैनेंद्र ने विषय को संवेदनशीलता के साथ चित्रित करने के

लिए अपनाई है। परंतु संवेदना कुछ और है। जाह्नवी का प्रेम उचित-अनुचित के प्रश्न पर जैनेंद्र के यहां विचारणीय नहीं है, वह मन की एक स्वाभाविक वृत्ति के रूप में चर्चा का विषय है।

जैनेंद्र ने इस कहानी में जाह्नवी के प्रेम की पीर को पूरी शिद्दत से अंकित किया है। संयोग से पड़ोस में रहने वाले पति-पत्नी की नजर जाह्नवी पर पड़ती है और वे अपने भतीजे बृजनंदन से उसका विवाह कराना चाहते हैं। पारिवारिक स्तर पर सारी बातचीत हो जाने के बाद सारे लोग इस विवाह के लिए सहमत हो जाते हैं। परंतु जाह्नवी का प्रेम के प्रति समर्पण भीतर-ही-भीतर कहीं उसे व्यथित कर रहा था। संभवत वह अपने को इस योग्य नहीं पा रही थी कि वह इस विवाह को स्वीकार कर ले। वह अपने माता-पिता की इच्छा की अवहेलना भी प्रत्यक्ष रूप से नहीं करना चाह रही थी। विवाह को लेकर उस समय लड़कियों की जो स्थिति थी, उसमें लड़कियों से राय-बात करना, उनकी इच्छा को जानना महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता था।

जाह्नवी, प्रेम तो करती थी परंतु इस सामाजिक दबाव की अवहेलना वह संभवतः नहीं कर सकी। इसलिए उसने एक अन्य मार्ग निकाला। उसके भीतर रिश्तो के प्रति सम्मान था। इसीलिए वह अपने होने वाले पति से सभी बातें कह देना चाहती थी। उसने बृजनंदन को एक पत्र लिखा और यह कहा कि, "आप जब विवाह के लिए यहाँ पहुंचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पाएंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिलनी चाहिए - वह जीवन-संगिनी भी हो। वह मैं हूँ या हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत संदेह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके मातापिता चा-हें, तो प्रस्तुत मैं अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे तो मैं अपने को दे ही दूँगी, आपके चरणों की धूलि माथे से लगाऊंगी। आपकी कृपा मानूंगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी मांग उठा लेंगे, मुझे छोड़ देंगे तो भी मैं कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ है। जो चाहें, करें।" उसके इस तरह पत्र लिख देने से उसे सामाजिक अवमानना का सामना करना पड़ा। जाहिर सी बात है, ब्रजनंदन के अभिभावकों ने विवाह तोड़ दिया और जैसा कि होता है, जाह्नवी के पूरे परिवार को इस अवमानना का दंश सहना पड़ा। बृजनंदन की चाची कहती है, "असल बात जाननी है तो जाकर पूछो उसकी महतारी से। भली समधिन बनने चली थी। वह तो मुझे पहले ही से दाल में काला मालूम होता था। पर देखो न, कैसे सीधी-भोली बातें करती थी। वह तो, देर क्या थी, सब हो ही चुका था। बस लगन-मुहूर्त की बात थी। राम-राम, भीतर पेट में कैसी कालिख रखे है, मुझे पता न था। चलो, आखिर परमात्मा ने इज्जत बचा ली। वह लड़की घर में आ जाती तो मेरा मुँह अब दिखाने लायक रहता ?"

कलंकित होने का सामाजिक भाव दोनों ही पक्षों के लिए महत्वपूर्ण और सोचनीय होता है। किसी भी घर-परिवार में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर बेशक लोगों से अन्य सुख और दुखों में मतलब हो या न हो, पर वह इन स्थितियों में बातें जरूर बनाते हैं और मोहल्ले-पड़ोस की बातों में फिर जो नहीं होता, वह भी सम्मिलित हो जाता है। यद्यपि यह सामाजिक आचरण, सामाजिक नियमों की अवहेलना न हो, इस हेतु किया जाता है। जाह्नवी के संदर्भ में यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि जैनेंद्र ने उसे एक ऐसी लड़की के रूप में चित्रित किया है, जिसके भीतर सच्चाई है। वह प्रेम करती है और उस प्रेम

को आस्था से स्वीकार करती है, निभाना चाहती है। इस प्रेम को लेकर वह अन्य रिश्तों के साथ किसी भी प्रकार का छल-कपट नहीं करती बल्कि पूरी सच्चाई से अपनी सही वस्तु स्थिति से सभी को अवगत कराती है। उसने कोई गलत काम नहीं किया पर प्रेम ऐसी भावना है, जिस पर किसी का वश नहीं है। अंतर्मन में घटित होने वाला यह भाव निर्बंध होता है और जैनेंद्र ऐसे ही निर्बंध भावों को प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त माने जाते हैं। वह इस बात की कतई परवाह नहीं करते हैं कि उनकी कही बात को किस हद तक सब यथार्थपरक ढंग से स्वीकार किया जाएगा। वह तो अंतर्मन के कुशल चितेरे हैं। और जैसा कि गोविंद मिश्र ने उनके संदर्भ में लिखा भी है, उस अनुरूप समाज के वाह्य पक्ष को चित्रित करने के बजाए उनकी रूचि व्यक्ति अंतर्मन की विभिन्न भंगिमाओं को चित्रित करने में रही है।

जाह्नवी का यह व्यवहार निश्चित रूप से किसी को भी खटक सकता है। ब्रजनंदन पत्र की भावना के अनुरूप विवाह को लेकर सारी सच्चाई अपने अभिभावकों से कह देता है और विवाह टूट भी जाता है। परंतु बृजनंदन आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है, जो इस सच्चाई की कद्र करना जानता है। निश्चित रूप से उसकी भावनाएं आहत होती हैं। विवाह को लेकर सारे विचार खंडित हो चुके होते हैं। बृजनंदन की भावनाओं के संदर्भ में कहानीकार लिखता है, "उसने दृढ़ता के साथ कह दिया कि मैं यह शादी नहीं करूँगा। लेकिन उसने मुझसे अकेले में यह भी कहा कि, चाचा जी मैं और विवाह करूँगा ही नहीं, करूँगा तो उसी से करूँगा।" परंतु कहानीकार ने बृजनंदन के इस कथन के माध्यम से यह दिखाया है कि, जाह्नवी की सच्चाई से बृजनंदन अत्यंत प्रभावित है और इसकी स्वीकारोक्ति वह इस रूप में करता है कि या तो अब वह विवाह करेगा ही नहीं और यदि करेगा तो इसी लड़की से। इस तरह जाह्नवी की सच्चाई को कहानीकार के द्वारा सराहा गया है।

अपनी सर्जना के क्रम में जैनेंद्र ने पात्रों की दृष्टि से अत्यंत क्रांतिकारी पात्रों का सृजन किया है। प्रेम और दांपत्य के संबंध में उन्होंने संवेदना को जिस विविधरूपी ढंग से आकार दिया है, उससे ही जाह्नवी, रुकिया, सुनीता और मृणाल जैसे पात्र सामने निकलकर आए हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों दोनों ही जगह यह बात हमें समान रूप से देखने को मिलती है। कहानी, उपन्यासों का अध्ययन करते समय यह तथ्य गौर करने लायक है कि उनके स्त्री-पात्र स्थितियों के द्वंद्व और संघर्ष में फंसते तो हैं और उस अनुरूप प्रवाह में बह भी जाते हैं, परंतु वे एक विवश स्थिति में दिखाई देने वाले पात्र हैं। किसी भी प्रकार का मुखर विद्रोह और फिर विद्रोह के पश्चात सम स्थिति को प्राप्त कर लेने जैसी दशा, उनमें दिखाई नहीं देती। यह सभी ऐसे पात्र हैं, जो स्थितियों में फंसते हैं और फिर विवश रूप से उन स्थितियों के परिणामों को भोगते दिखाई देते हैं। मृणाल, रुकिया, जाह्नवी आदि सभी इसी प्रकृति के पात्र हैं। जाह्नवी का प्रेम अधूरा है क्योंकि वह परिवार की सीमा-रेखा को लांघने का साहस नहीं कर सकी। मृणाल और रुकिया इस सीमा-रेखा को लांघने का दुस्साहस करते हैं तो उसका दुष्परिणाम भी हम उन्हें भोगते हुए देख सकते हैं। जैनेंद्र ने समाज की इन स्थितियों को चित्रित किया है पर अपनी कहानियों में कहीं भी वे सामाजिक शक्तियों की हार दर्शित करते नहीं दिखायी देते। इन पात्रों में इतनी हिम्मत तो है कि वह अपने किए को स्वीकार करते हैं और उस पर आगे भी बढ़ते हैं परंतु यह सभी सामाजिक शक्ति के सामने परास्त हैं।

जाह्नवी कहानी की वस्तु को देखते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि जैनेंद्र अपने समय की युवा पीढ़ी के अंतर्मन को न सिर्फ टटोल रहे थे बल्कि उसका चित्रण भी कर रहे थे। इन बदलावों में कहीं मूल्यांकन करते नहीं दिखाई देते। मूल्यांकन उनकी प्रवृत्ति रहा भी नहीं है। परंतु सामाजिक मान्यताओं और मूल्यों में जिस तरह से परिवर्तन आ रहा है, उसको वह भली-भांति चित्रित कर देते हैं। प्रेम जीवन की सहज सच्चाई है और ऐसा नहीं कि जिस रूप में इसकी अभिव्यक्ति इस समय होती है, पुराने समय में इससे अलग रही होगी। प्रेम की पीर का जैसा चित्रण मध्यकालीन साहित्य में देखने को मिलता है वैसी गहराई तो आज भी देखने को नहीं मिलती। परंतु सामाजिक वर्जनाओं के चलते उसकी स्वीकारोक्ति तब संभव नहीं थी। आधुनिक काल में जीवन को लेकर लगातार बदलती हुई दृष्टि में यह संभव हुआ। जैनेंद्र की कहानी जाह्नवी उस दृष्टिकोण को भी दिखा पाने में सक्षम रही है।

९.२ बाहुबली

९.२.१ बाहुबली : मूल संवेदना:

बाहुबली एक विचार प्रधान कहानी है। एक अच्छा कथाकार होने के साथ-साथ जैनेंद्र एक अच्छे चिंतक भी थे। और अपने जीवन दर्शन को लेकर भी उन्होंने कई रचनाएं लिखी हैं। बाहुबली ऐसी ही कहानी है। इसके माध्यम से जैनेंद्र ने एक काल्पनिक कथा के सहारे कर्म की महत्ता को सिद्ध किया है। अपनी विचार-प्रधानता के कारण यह कहानी पाठकों का उस रूप में मनोरंजन नहीं करती परंतु इस कहानी में मानव इतिहास और विकास को लेकर एक स्पष्ट दृष्टि देखने को मिलती है। कर्म का दर्शन भारतीय साहित्य परंपरा में सदा से ही अभिप्रेत रहा है। अलग-अलग कालखंडों में जब मानव सभ्यता कुंठित होती है, कोई-न-कोई विचार पुरुष कर्म-दर्शन के माध्यम से अपने समय की मानवीय सभ्यता को प्रेरणा देने की कोशिश करता रहा है। इस कहानी में जैनेंद्र ने इतिहास और परंपरा की चर्चा करते हुए इस तथ्य को भी महत्वपूर्ण ढंग से सामने रखा है। सन्यास का भारतीय जीवन परंपरा में अत्यंत महत्व रहा है परंतु यह सन्यास सभी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर श्रेय और प्रेय रहा है। सन्यास और पलायन के फर्क को भी इस कहानी ने सामने रखा है। बाहुबली वैचारिक आस्थाओं को नए कलेवर में प्रस्तुत करने वाली कहानी है।

९.२.२ बाहुबली : विश्लेषण:

साहित्य जीवन और जगत से जुड़ी हुई सच्चाई को प्रस्तुत करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। प्रत्येक साहित्यकार अपने रचना-संदर्भों को विभिन्न विधाओं में गूँथकर कर प्रस्तुत करता है। रचना-संदर्भों के बारे में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक साहित्यकार की अभिरुचि यहां जीवन के अलग-अलग पक्षों में रमती रही है। जैनेंद्र की रुचि जीवन के ऐसे संदर्भों को टटोलने में रही है जो नितांत व्यक्तिगत माने जाते रहे हैं। सार्वजनिक संदर्भों को लेकर वे उतने उत्सुक कभी नहीं रहे। इसीलिए वे अपने समय के अकेले ऐसे साहित्यकार हैं, जो व्यक्ति अंतर्मन की विविध दशाओं और भावों से रूबरू होते और पाठकों को कराते दिखाई देते हैं। जैनेंद्र के कथा लेखन में प्रेम और दांपत्य के विविध संदर्भ उनके प्रिय विषय रहे हैं, जिन्हें उन्होंने बदलते युगीन संदर्भों में सर्वथा नई दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास किया है। और समाज को इन विषयों पर अपनी सोच को बदलने और सकारात्मक

दृष्टिकोण निर्मित करने में समर्थ बनाया है। परंतु सदैव ऐसा ही नहीं होता। वह भी विषयांतर करते हैं। उनकी कई कहानियाँ अत्यंत विचार प्रधान कहानियों के रूप में हमारे सामने आती हैं, जिनमें वे इतिहास और विभिन्न दार्शनिक पक्षों पर कहानियों का सृजन कर विशिष्ट विचार या सोच को आगे बढ़ाते दिखाई देते हैं। कहानी 'बाहुबली' उनकी ऐसी ही एक उल्लेखनीय रचना है।

'बाहुबली' कहानी जीवन की किसी एक घटना या संदर्भ को चित्रित करने वाली कहानी नहीं है, बल्कि यह समग्र जीवन को सर्वथा नई दृष्टि से देखने का प्रयास है। भारतीय दार्शनिक वांग्मय, अनेक विचारधाराओं को लेकर आगे बढ़ता है। सनातन, जैन-बौद्ध, चार्वाक, अद्वैत आदि दर्शन और इनके साथ-साथ विभिन्न संप्रदाय अलग-अलग थोड़े बहुत अंतर के साथ एक ही दिशा की ओर ले जाने वाले दर्शन हैं। भारतीय दर्शन में भगवतगीता का अत्यंत विशिष्ट स्थान है, जो कर्म की प्रेरणा देने की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय ग्रंथ है। 'बाहुबली' कहानी कुछ इसी तरह के संदर्भों को प्रस्तुत करने वाली कहानी है। जैनेंद्र के कथा लेखन के बारे में माना जाता है कि कई स्थानों पर वे फैंटेसी रचते दिखाई देते हैं। एक सरल गद्यरूप होते हुए भी, कहानी में वे इस तरह की स्थितियों का सृजन कर देते हैं, जो प्रतीकात्मक ढंग से अपने मंतव्य को स्पष्ट करती हैं। अमूमन कहानियों में इस तरह की स्थितियाँ बहुत कम देखने को मिलती हैं। यह तो कविता या विचारपरक निबंधों में ही देखने को मिलता है। पर जैनेंद्र को इन स्थितियों को कहानी में ढालने की कला भी आती है। बाहुबली इसी कला का सार्थक परिणाम है।

कहानी का आरंभ जैनेन्द्र मानव प्रजाति के इतिहास को लेकर अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के साथ करते हैं और कहते हैं, "बहुत पहले की बात कहते हैं। तब दो युगों का संधिकाल था। भोगयुग के अस्त में से कर्मयुग फूट रहा था। भोगकाल में जीवन मात्र भोग था। पाप-पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय अतः पाप असंभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था।........ उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानो कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढूँढ़ा गया। परिवार बनने लगे और परिवारों में समाज। नियम-कानून भी उठे। 'चाहिए' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञात हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है।" अपने इस एक कथन के द्वारा जैसे जैनेंद्र ने मानव जाति के समूचे इतिहास को इन चंद पंक्तियों में रच दिया है। अपने आरंभिक युग में मनुष्य को जब किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। न उसे आग का ज्ञान था, न पहिए की कोई जानकारी थी, न वह खेती-बाड़ी और पशुपालन के संदर्भ में ही कुछ जानता था। तब उसका जीवन एक यायावर का जीवन था। इधर-उधर घूमना ही उसकी दिनचर्या थी। शिकार और प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त भोज्य-पदार्थों से ही वह अपना जीवन-यापन करता था। किसी भी प्रकार की सामाजिक चेतना उसमें नहीं थी। भले ही वह समूहों में रहता रहा हो, पर विवाह आदि संस्था का कोई अस्तित्व नहीं था। साथ रहने की जरूरत भी उसे जीवन आत्मरक्षा को लेकर पड़ी होगी और उसने अपने सामाजिक जीवन की इस पहली अनिवार्य शर्त को पूरा किया होगा। धीरे-धीरे समय के साथ चलते-चलते उसमें नए विचारतंतु पैदा हुए होंगे। आवश्यकताओं ने उसे सामाजिक संगठन को लेकर प्रेरित किया होगा और तत्पश्चात समाज और आवश्यकतानुसार विवाह जैसी संस्थाओं का गठन हुआ होगा।

उस प्रागैतिहासिक काल में 'चाहिए' का प्रश्न मौजूद नहीं रहा होगा। अत्यंत सूक्ष्मदृष्टि से जैनेंद्र ने इस प्रश्न को भी सामने रखा है। समाज में लूट, दबंगई आदि ने 'चाहिए' के प्रश्न को जन्म दिया होगा। उचित और अनुचित पर विचार आरंभ हुआ होगा। इस 'चाहिए' का संघर्ष ही पूरे मानव इतिहास में दिखाई देता है। यह मनुष्य की अपनी स्वाभाविक वृत्ति से संभव होता है। नियम बनते हैं और मानव कल्याण के लिए बनते हैं। उन पर चलना ही चाहिए। यही सही स्थिति है। परंतु प्रत्येक व्यक्ति इस प्रवृत्ति का नहीं होता। उच्छृंखलता के कारण तमाम न्यायिक विधान भी बने होंगे। पंचायतें इन्हीं का आरंभिक रूप हैं। गांव न्याय के लिए इन्हीं पर निर्भर रहते थे। विकास की विभिन्न दशाओं को प्राप्त करने की जद्दोजहद में ही मनुष्य आगे बढ़ा होगा। खेती-बाड़ी, पशुपालन आदि का ज्ञान उसने धीरे-धीरे विकसित किया होगा। अब उसकी स्थिति यह थी कि वह प्रकृति से संचालित नहीं हो रहा था बल्कि प्रकृति को अपने अनुरूप संचालित करने का प्रयास कर रहा था। यहीं कर्म की स्थिति पैदा होती है। जैनेंद्र ने यह स्पष्ट किया है कि, "भोग से अधिक जीवन कर्म है और प्रकृति को ज्यों-का-त्यों लेकर बैठने से नहीं चलेगा। कुछ उस पर संशोधन, परिवर्धन, कुछ उस पर अपनी इच्छा का आरोपण भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा, कपड़े बनाने होंगे, जीवन संचालन के लिए नियम स्थिर करने होंगे और जीवन-संवृद्धि के निमित्त उपादानों का भी निर्माण और संग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यता को पाना होगा।"

बाहुबली कहानी में तीन पात्र हैं - आदिनाथ भरत और बाहुबली। आदिनाथ समाज के द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार किए गए प्रधान हैं। भरत और बाहुबली उनके पुत्र हैं। मानव समाज के द्वारा निर्मित पहले राज्य के राजा आदिनाथ हुए। इतिहास की अपनी तरह से व्याख्या करते हुए जैनेंद्र लिखते हैं, "तब व्यक्ति व्यष्टि-सत्ता से समष्टि-सिद्धि की ओर बढ़ चला था। राजा जैसी वस्तु की आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्व की संस्था पर न खड़ा हो, प्रजा की मान्यता पर खड़ा हो। यह तो पीछे से हुआ कि राजत्व की संस्था बनी और शिक्षा और न्याय विभाग-रूप में शासन से पृथक हुए। नगर बन चले थे और जीवन-यापन नितांत स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यम की आवश्यकता थी।" इस तरह मनुष्य यायावर मुद्रा से बाहर निकलकर सामाजिक हुआ और तत्पश्चात आवश्यकता के अनुसार विकास की नई-नई स्थितियाँ बनने लगीं। एक समय के बाद आदिनाथ ने अवस्था के चौथे खंड में अपने पुत्रों को बुलाकर यह इच्छा जाहिर की कि वे दीक्षा लेना चाहते हैं। अब पदभार तुम संभालो। बड़े पुत्र भरत ने सत्ता संभाली और पिता से भी आगे बढ़कर पृथ्वी के छह खंडों पर विजय स्थापित की तथा भांति-भांति के उपहार लेकर नगर लौटा। साथ में शासन चक्र था, जो नगर में प्रविष्ट नहीं हो रहा था। कारण कि भरत का भाई बाहुबली अविजित रूप में उपस्थित था और विजय पूर्ण नहीं हुई थी। भरत और बाहुबली के संघर्ष के बाद विजयी बाहुबली ने सम्मानपूर्वक सत्ता भरत को सौंप दी और स्वयं कैवल्य प्राप्ति के लिए तपस्यारत हो गए। भरत राजकाज में संलग्न हो गए और बाहुबली तपस्या में लीन हो गए।

लंबे समय के पश्चात भरत ने श्री आदिनाथ से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। अनुमति मिलने पर भरत ने दीक्षा ग्रहण की और कैवल्य प्राप्त किया। वहीं दूसरी तरफ लंबे समय से तपस्यारत बाहुबली कैवल्य प्राप्ति नहीं कर सके। सभी को आश्चर्य था। परंतु कहानीकार का मंतव्य इस पूरे प्रसंग में यह दिखाना था कि सन्यास की स्थिति कर्म के बाद है। कर्म से

पहले का संन्यास भी फलीभूत नहीं होता। भरत ने मनुष्य होने के सभी धर्म निभाये। युवावस्था में उन्होंने समाज को अपना अहम योगदान दिया। सब इच्छाएं पूर्ण होने के पश्चात उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। वहीं बाहुबली प्रत्यक्ष कर्म से दूर तपस्यारत थे। जीवन का वह मूल उन्हें पता नहीं था, जो भरत जानते थे। यद्यपि इसके बाद जैनेंद्र ने कहानी को थोड़ा दूरूह बना दिया है। और पाठक भ्रमित हो जाता है। परंतु इतना तो निश्चित है कि इस सभी कार्य व्यापार और प्रसंगों के माध्यम से जैनेंद्र जीवन को क्रमानुसार व्यतीत करने के पक्षधर हैं। सन्यास निश्चित रूप से जीवन का अभिप्रेत है, परंतु इसका क्रम भी निश्चित है और कैवल्य प्राप्ति तभी संभव है, जब मनुष्य अपने कर्मों से निवृत्ति पा ले। इस तरह जैनेंद्र ने अपने वैचारिक सरोकारों को इस कहानी में आकार दिया है।

९.४ सारांश

इस इकाई के अंतर्गत जैनेंद्र की दो कहानियों का अध्ययन किया गया है। दोनों ही कहानियाँ जीवन के अलग-अलग पक्षों को केंद्र में रखकर निर्मित की गई हैं। जाह्नवी कहानी जहां जैनेंद्र के प्रिय विषय, प्रेम और दांपत्य के सूत्रों को आधार बनाकर लिखी गई है, वहीं बाहुबली कहानी की रचना जैनेंद्र ने अपने वैचारिक सरोकारों को स्पष्ट करने के लिए की है। जाह्नवी, हिन्दी कहानियों में रचित पात्रों में एक विशिष्ट पात्र है। उससे अपने समय को अभिव्यक्त करने में जैनेंद्र को काफी मदद मिली है। जैनेंद्र ने जाह्नवी के रूप में एक ऐसी लड़की का चित्रण किया है, जो एक तरफ तो अपने समय के दबावों का सामना कर रही है, वहीं दूसरी तरफ मानवीय सहज भाव, प्रेम के वशीभूत भी है। उसका प्रेम, निर्मल और स्वच्छ प्रेम है। उस प्रेम को पाने के लिए वह इच्छुक है परंतु किसी भी प्रकार की सामाजिक अवमानना उसके द्वारा नहीं की जाती है। उसके भीतर खालीपन है। प्रेम को लेकर एक अद्भुत पीर है। परंतु वह विद्रोही नहीं है। माता-पिता की इच्छा अनुसार विवाह तय किए जाने पर वह विवाह से भी पूर्ण नकार नहीं करती। वह रिश्तों को लेकर बेहद ईमानदार है और बृजनंदन से सारी सच्चाई वह बयान करती है। अंततः विवाह टूट जाता है। जिसके लिए वह मानसिक रूप से तैयार भी है। वह अपने अपूर्ण प्रेम के सहारे जीवन व्यतीत कर रही है। जाह्नवी कहानी के माध्यम से जैनेंद्र ने प्रेम की समयानुकूल अभिव्यक्ति की है। जैनेंद्र प्रेम और दांपत्य के संदर्भ में अपने समय संदर्भों को कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की दृष्टि से अपने समय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखकों में से एक रहे हैं। यह अपने समय की एक बदलती हुई सच्चाई है, जिसका अंकन इस कहानी में हुआ है।

बाहुबली कहानी जैनेंद्र के वैचारिक सरोकारों को स्पष्ट करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानी है। जैनेंद्र का भाव बोध जिस समय विकसित हुआ, वह राष्ट्रीय आंदोलन का सबसे आक्रामक दौर था। स्वयं जैनेंद्र ऐसी आंदोलनकारी गतिविधियों से काफी समय तक जुड़े रहे और तत्पश्चात वे लेखन की ओर मुड़े। उस दौर में जन-जागरण के अद्भुत प्रयास तत्कालीन नेतृत्व के द्वारा किए जा रहे थे। उस समय के भारतीय समाज से कई तरह की अपेक्षाएं थी। वह समय बैठने का, खुद को कुंठित करने का समय नहीं था बल्कि कर्म प्रेरणा के वशीभूत रहकर कर्म विधान का समय था। इस कहानी में जैनेंद्र ने मानव इतिहास के कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भी सार्थक तरीके से विचार किया है। मानव इतिहास को लेकर अभिव्यक्त किए गए उनके विचार तर्क-सिद्ध और प्रामाणिक हैं। सर्वथा नवीन बोध और वैचारिक सरोकारों को लेकर लिखी गई यह कहानी जैनेंद्र के एक अलग ही भाव बोध और अंदाज को प्रस्तुत करती

है। यद्यपि यह कहानी अंत में अपनी दुरूहता के कारण पाठकों को भटकाती भी है, जिसका कारण जैनेंद्र का जटिल शिल्प है। जैनेंद्र अपनी बात को अन्य कहानीकारों की तरह सहज अंदाज में नहीं कहते बल्कि उनका नजरिया कुछ प्रतीकात्मक होता है। जिसके चलते यह कहानी कुछ दुरुह हो गई है। परंतु जैनेंद्र के रचना सरोकारों की दृष्टि से यह भी जैनेंद्र के नितांत भिन्न पक्ष को सामने रखती है। जैनेन्द्र के एक नये रूप से परिचित कराती है।

९.५ उदाहरण व्याख्या

व्याख्या-अंश १: आप जब विवाह के लिए यहाँ पहुंचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पाएंगे। लेकिन मेरे चित्त की हालत इस समय ठीक नहीं है और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पात्रता मुझमें नहीं है। एक अनुगता आपको विवाह द्वारा मिलनी चाहिए - वह जीवन-संगिनी भी हो। वह मैं हूँ या हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत संदेह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके माता-पिता चाहें तो प्रस्तुत मैं अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे तो मैं अपने को दे ही दूँगी, आपके चरणों क धूलि माथे से लगाऊंगी। आपकी कृपा मानूंगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी मांग उठा लेंगे मुझे छोड़ देंगे तो भी मैं कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ है। जो चाहें करें।

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की कहानी जाह्नवी से उद्धृत है।

प्रसंग: जाह्नवी का चरित्र कहानी में अपने प्रेम को समर्पित है। परंतु माता-पिता की इच्छा से बृजनंदन के साथ विवाह तय हो जाने के पश्चात जाह्नवी संभवत अपने अतीत को छुपाना नहीं चाहती और इसीलिए वह एक पत्र के द्वारा बृजनंदन से इस तरह की याचना करती है। यह घटनाक्रम रिश्तो के प्रति जाह्नवी के चरित्र की ईमानदारी को संकेतित करता है।

व्याख्या: भारतीय समाज में परंपराओं ने मनुष्य के जीवन को एक मार्ग पर सुनिश्चित कर रखा है और इस क्रम पर चलते हुए ही समाज अपने जीवन को सार्थक करता है। युवा होने के पश्चात विवाह एक अनिवार्यता है। भारतीय समाज में विवाह से पहले प्रेम की कोई अवधारणा नहीं है। जैनेंद्र ने इस कहानी में जाह्नवी के रूप में एक ऐसे पात्र का चित्रण किया है, जो विवाह से पहले किसी युवक के प्रेम में अभिभूत है। उसका प्रेम निश्चल और निष्कलंक है। परंतु कहानी यह संकेत करती है कि प्रेम उसको प्राप्य नहीं है और जाह्नवी प्रेम की पीर में तप्त है। समय के साथ उसका विवाह सुनिश्चित होता है। अपने भारतीय संस्कारों के अनुरूप वह अपने विवाह से इंकार नहीं कर पाती परंतु रिश्तो के प्रति उसमें गहरी ईमानदारी है। जिसके चलते वह बृजनंदन को विवाह से पहले ही सारी बातें बता देना चाहती है। इस हेतु वह एक पत्र लिखती है और बृजनंदन से याचना करती है कि विवाह से उसे कोई परेशानी नहीं है, यदि ब्रजनंदन उसे स्वीकार करेगा तो वह भी पूरी आस्था से ब्रजनंदन को स्वीकार करेगी और यदि सच्चाई जानने के बाद ब्रजनंदन विवाह तोड़ देता है, तो भी उसे कोई उज्र नहीं होगा। यद्यपि पुरुष - सत्तात्मक समाज में यह सच्चाई काफी कड़वी होती है और अंततः ब्रजनंदन भी इस विवाह को स्वीकार नहीं कर पाता। परंतु ब्रजनंदन के मन में कहीं न कहीं जाह्नवी के लिए अत्यंत सम्मान का भाव भी है और यह सम्मान का भाव उसके भीतर उसकी ईमानदारी के कारण पैदा होता है। विवाह को लेकर उसकी धारणा थोड़ी बदल जाती है। वह अपने चाचा से कहता भी है कि वह अब विवाह

नहीं करना चाहता और यदि करना ही पड़ेगा तो वह जाह्नवी से ही विवाह करना पसंद करेगा। यह पूरा प्रसंग समाज में बदलती हुई पुरुष सत्तात्मक सोच का संकेतित करता है।

विशेष: इस उद्धरण में जैनेंद्र ने बदलते हुए सामाजिक संदर्भों का चित्रण किया है।

व्याख्या-अंश २: बहुत पहले की बात कहते हैं। तब दो युगों का संधिकाल था। भोगयुग के अस्त में से कर्मयुग फूट रहा था। भोगकाल में जीवन मात्र भोग था। पाप-पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय अतः पाप असंभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था।...... उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानो कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढूँढ़ा गया। परिवार बनने लगे और परिवारों में समाज। नियम-कानून भी उठे। 'चाहिए' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञात हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है।

संदर्भ: प्रस्तुत उद्धरण जैनेंद्र की विचार प्रधान कहानी बाहुबली से उद्धृत है।

प्रसंग: कहानी के संदर्भ को निर्मित करते हुए यहां जैनेंद्र मानव इतिहास के विकास को स्पष्ट कर रहे हैं। किस प्रकार मानव सभ्यता यायावर जीवन को छोड़कर अपने जीवन को नियमित करने की ओर बढ़ी थी, किस प्रकार समाज जैसी संस्था का गठन हुआ और जीवन को नियमित करने के लिए विवाह संस्था आदि का विकास हुआ, किस प्रकार मत्स्य न्याय को समाप्त करने के लिए नियमों और कानूनों का गठन हुआ। इस परिच्छेद में जैनेंद्र ने मानवता के स्वाभाविक विकास को लक्षित किया है।

व्याख्या: मानव जन्म और विकास के संदर्भ में डार्विन का विकासवादी सिद्धांत सर्वाधिक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है। मानव के इतिहास में आवश्यकताओं के कारण विभिन्न प्रकार की संस्थाओं, नियमों और कानूनों का विकास हुआ है। आरंभ में मनुष्य यायावर जीवन जीता था, इधर-उधर भटकता था और अपने जीवन यापन के लिए पूरी तरह से प्रकृति पर निर्भर था। प्रकृति से जो सहज रूप से उसे प्राप्त हो जाता था, उसी में वह अपना जीवन यापन करता था। परंतु जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, स्रोतों को लेकर आपस में संघर्ष भी बढ़ने लगा और जीवन को नियमित करने की आवश्यकता सामने आयी। इसी आवश्यकता के चलते मनुष्य ने समूहों का गठन किया। जिन्होंने बढ़ते-बढ़ते बड़े समाजों का रूप धारण कर लिया। इन समाजों के गठन के पश्चात सामाजिक जीवन को नियमित करने के लिए विवाह आदि संस्थाएं बनीं। कुछ मनुष्यों की उच्छृंखलता के चलते जब-तब समाज में अशांति का वातावरण उत्पन्न होता रहता था और इसी के चलते नियम-कानून आदि का गठन हुआ। ग्रामीण समाज में पंचायत जैसी संस्थाएं इस आरंभिक रूप को ही प्रकट करती हैं, जहां समूह के ही कुछ बुद्धिमान और ईमानदार लोग न्याय देने का कार्य करते थे। इसी के साथ मानव जीवन में 'चाहिए' के प्रश्न का भी प्रादुर्भाव हुआ अर्थात मनुष्य के लिए क्या करना ठीक है और क्या निषिद्ध है, यह भी देखा और परखा गया। मानव समाज ने मिलकर जो नियम बनाए, उन सभी का पालन अनिवार्य रूप से 'चाहिए' के अंतर्गत था। इससे विचलन, अपराध की श्रेणी में रखा गया। इस प्रकार जैनेंद्र मानवता के क्रमबद्ध विकास पर एक स्वतंत्र दृष्टिकोण से विचार करते हैं। इससे इतिहास के संबंध में उनकी विशिष्ट चेतना का पता लगता है।

विशेष: इस उद्धरण के माध्यम से जैनेंद्र की विशिष्ट इतिहास दृष्टि का पता चलता है।

९.६ वैकल्पिक प्रश्न

१. जाह्नवी का विवाह किसके साथ निश्चित होता है ?

(क) आदिनाथ (ख) बाहुबली (ग) भरत (घ) ब्रजनंदन

२. जाह्नवी छत पर किन्हें भोजन के लिए आमंत्रित करती थी ?

(क) गौरैया (ख) मोर (ग) कबूतर (घ) कौए

३. ब्रजनंदन अंततः किसके साथ विवाह करना चाहता है ?

(क) सुनीता (ख) कल्याणी (ग) मृणाल (घ) जाह्नवी

४. भरत के पिता का क्या नाम है ?

(क) जयराज (ख) ब्रजनंदन (ग) सुकेश (घ) आदिनाथ

५. बाहुबली के भाई का क्या नाम है ?

(क) जयराज (ख) ब्रजनंदन (ग) आदिनाथ (घ) भरत

६. कैवल्य प्राप्त करने के लिए कौन तपस्यारत था ?

(क) जयराज (ख) ब्रजनंदन (ग) जाह्नवी (घ) बाहुबली

९. ७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए ?

(क) बाहुबली (ख) जाह्नवी (ग) बृजनंदन (घ) भरत

२. जाह्नवी कहानी की मूल संवेदना

३. बाहुबली कहानी का उद्देश्य

९.८ बोध प्रश्न

१. जाह्नवी कहानी के मूल-मंतव्य को विस्तार से स्पष्ट कीजिए ?

२. जाह्नवी कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?

३. जाह्नवी के चरित्र का सविस्तार विश्लेषण कीजिए ?

४. जाह्नवी कहानी अपने समय-संदर्भों को स्पष्ट करने में कहाँ तक सक्षम है ।' कथन का विश्लेषण कीजिए ?

५. बाहुबली कहानी के माध्यम से जैनेंद्र के वैचारिक सरोकारों को स्पष्ट कीजिए ?

६. बाहुबली कहानी की सोद्देश्यता पर एक निबंध लिखिए ?

७. बाहुबली कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?

*****